किसान कैसे लड़ते हैं?

स्वामी सहजानंद सरस्वती

किसान कैसे लड़ते हैं ?

स्वामी सहजानन्द सरस्वती

"धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्कर्षकस्य न विद्यते
तस्माद्युध्यस्व कर्षक"

"अपने आपको बरकरार रखने के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई के अलावा किसानों के लिए कोई रास्ता है ही नहीं। इसलिए उन्हें लड़ना ही होगा।"

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.
५-ई, रानी झांसी रोड,
नयी दिल्ली

जनवरी, १९८९

मूल्य : १२ रुपये

पी॰सी॰ जोशी द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, रानी झांसी रोड, नयी दिल्ली से मुद्रित और उन्हीं के द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड नयी दिल्ली-११००५५ की ओर से प्रकाशित।

बात क्या है ?

कोई यह समझने की भूल न करे कि इस पुस्तिका में लिखी बातें निरी कहानियां हैं और मैंने उनका संग्रह कर दिया है। असल में गत बारह वर्षों में अधिकांश बिहार में और अन्यत्र भी किसानों के द्वारा चलायी जाने वाली अपने हकों की जिन लड़ाइयों का मैंने स्वयं अनुभव किया है और बहुत नजदीक से देखा है कि किसान उन्हें किस प्रकार चलाते रहे हैं, उन्हीं का संग्रह यहां किया गया है।

यों तो ऐसी सैकड़ों लड़ाइयां बिहार में, विशेष रूप से किसान सभा की देख-रेख में ही, लड़ी गयी हैं। मगर उनमें जिनसे, या जिनके जिन अंशों से, किसानों और किसान-कार्यकर्त्ताओं को भविष्य में अपना संग्राम चलाने में सहायता मिल सकती है, केवल उन्हीं को मैंने चुन लिया है। जिन लड़ाइयों का आगे वर्णन है, उनमें किसानों की विजय हुई है, यह खूबी है—चाहे पीछे प्रकारान्तर से उन्हें भले ही परेशान या तबाह किया गया हो।

किसानों का युद्ध-क्षेत्र धीरे-धीरे बढ़ रहा है और आये दिन बकाश्त जमीन या इसी प्रकार की दूसरी बातें लेकर किसानों को जमीदारों तथा औरों के साथ संघर्ष करने के मौके ज्यादा आ रहे और आने वाले हैं। इसलिए आशा है, आगे लिखी घटनायें अवश्य उनका पथ-प्रदर्शन करेंगी। इन्हें पढ़ कर हम उनकी त्रुटियों को भी जान सकते और भविष्य में उन से बच सकते हैं।

सेंट्रल जेल, हजारी बाग, — **स्वामी सहजानन्द सरस्वती**
आषाढ़ शुक्ल, विष्णुशयनी एकादशी, — १५-७-४०
सं. १९९७ वि.

भागलपुर जिले में, गंगा के किनारे, उत्तर ओर, सोनबरसा गांव है।

गांव बड़ा है और ब्राह्मणों की बस्ती है। कुछेक को छोड़, साधारण श्रेणी के ही किसान वहां बसते हैं।

उस इलाके में मिस्टर ग्रान्ट की जमीदारी है। उनकी दो कोठियां नारायणपुर और लत्तीपुर में हैं। एक तो अंग्रेज, दूसरे जमीदार। फिर तो "करैला नीम पर चढ़ गया।" सो भी ग्रान्ट साहब कोई ऐसे-वैसे अंग्रेज नहीं। वह बड़े ही चलते-पुर्जे और तपाक वाले थे।

उनकी न सिर्फ भारत सरकार और प्रान्तीय सरकार तक ही चलती थी, वरन ठेठ अंग्रेजी सरकार और पार्लियामेंट में भी उनकी धाक थी। फलतः यदि संयोग से कभी यहां उनकी सुनवायी न होती, तो वहीं प्रश्न करवाते और पार्लियामेंट के मेम्बरों के द्वारा अपना काम बना लेते थे। इसीलिए यहां के छोटे-बड़े सभी हाकिम-हुक्काम उनसे डरते और पनाह मांगते थे। किसी के ऊपर उनकी जरा-सी नजर बिगड़ी कि उसकी खैरियत नहीं।

परिणामस्वरूप अपनी बड़ी जमीदारी में, जेठ के महीने के मध्याह्न के सूर्य की तरह तपते थे। किसी किसान या मजलूम की क्या मजाल कि चूं करे। सभी थर्राते रहते और बिना जबान हिलाये ही उनके जुल्मों को चुपचाप सहते थे, क्योंकि "न तड़पने की इजाजत थी, न फर्याद की थी। घुटके मर जायें, मर्जी यही सैयाद की थी!" उनके छोटे-मोटे अमलों की नादिरशाही और मनमानी-घरजानी का, ऐसी हालत में, आसानी से अन्दाज लगाया जा सकता है। वे किसानों के लिए यमराज से भी बढ़ कर थे।

जैसा कि जमीदारों और सभी शासकों का कायदा होता है, ग्रान्ट

साहब और उनके मैनेजर ने हर गांव के प्रभावशाली और चलते-पुर्जे लोगों को चुन-चुन कर अपने अमले बना लिया था और अपने किसी न किसी काम में लगा दिया था। फिर तो बाक़ियों के लिए कोई चारा न था, सिवाय इसके कि आंख मूंद कर उनका लोहा मानें और उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ सांस भी न लें। यदि गरीब और पीड़ित किसान अत्याचारों और ज़ुल्मों से ऊब कर कोई प्रतिकार करना चाहते भी, तो बेबस थे—क्योंकि आज की तरह वह ज़माना किसान सभा का न था कि ज़ालिमों को नाकों चने चबवाने का काम आसानी से हो जाता। तब तो किसान अत्यंत विश्रृंखल और अप्रबुद्ध थे। हां, धीरे-धीरे उनमें जागृति आने जरूर लगी थी।

किसानों का तो एक ही बल है—संगठन। और, वह उस समय उनमें था नहीं। अगर ऊब कर वे स्वभावतः संगठित होना चाहते भी, तो कोई मददगार न थे, प्रत्युत बाधक और फोड़ने वाले ही ज्यादा थे। कारण, धनी और प्रभावशाली लोग तो साहब के डबल गुलाम पहले से ही बने हुए थे और वे थे उनके पूरे नमक हलाल! इसलिए ज्यों ही बेचारे गरीब सुगबुगाते कि उस्ताद लोग आकर उन्हें ठंडा करने लग जाते। कभी भय, कभी तकदीर और कभी भगवान की बात लाकर उन्हें पस्त कर देते थे।

"ग्रान्ट साहब गोरे तो हैं ही, तिस पर तुर्रा यह कि सात समुन्दर पार आकर यहां जमीदारी कर रहे हैं! यह करम की बात और भगवान की मर्ज़ी नहीं तो और क्या है? उनके पूर्वजन्म की कमाई के बिना यह कैसे हो सकता है?"

यही दलील उभड़ते हुए किसानों को ठंडा करने में जादू का काम कर जाती थी और सीधे-सादे किसान कलेजा मसोस कर रह जाते थे। साहब उन्हें उजाड़ डालेंगे, यह भय का भूत तो अलग था ही।

लेकिन कहते हैं कि "ज़ुल्म की टहनी सदा फलती नहीं!" इसलिए एक न एक दिन मिस्टर ग्रान्ट का अत्याचार इन गरीबों को उभाड़े बिना नहीं रह सकता था। जब कई बार कोशिश करके भी वे साहब का बाल बांका न कर सके प्रत्युत स्वमेव तबाह हो गये, तो निराशा

की दशा में अधीर बन गये और मतवालों की सी दशा में आ गये और सोचने लगे कि साहब से जैसे हो निपटना ही चाहिए—चाहे परिणाम कुछ भी क्यों न हो।

बिल्ली बड़ी ही कमजोर होती और आदमी से डर कर भागती है। लेकिन आखिर सब चीजों की सीमा होती है और डर भी मजबूरन कभी छोड़ना ही पड़ता है। आप उसी बिल्ली को खदेड़ते-खदेड़ते किसी ऐसे मकान में पहुंचा दें जिसमें एक ही दरवाजा हो, भागने के लिए खिड़कियां या रास्ते न हों; अन्त में वह दरवाजा भी बन्द कर यदि आप बिल्ली के पीछे पड़ जायें तो नतीजा क्या होगा ? वहां भी जान बचाने की कोशिश वह करेगी जरूर और इधर-उधर कूदे-फांदेगी भी। मगर बचाव की कोई आशा न रहने पर वह भागना बन्द कर पीठ को दीवार की ओर और मुंह आप की ओर कर सारी शक्ति से गुर्राना शुरू करेगी, जैसे कोई बाघिन हो। इतना ही नहीं। आप पर छपकेगी भी और अगर जान लेकर आप न भागे तो पंजे से आपका पेट भी फाड़ेगी या कम से कम मुंह नोच लेगी जरूर।

जान बचाने के लिए अब तक वह भागती फिरती थी। अब आप भागिये, नहीं तो खैरियत नहीं !

यह उल्टी बात क्यों हो गयी ? बिल्ली को बाघिन किसने बनाया ? निहायत डरपोक और कमजोर बिल्ली में यह अपार शक्ति एकाएक कहां से आ गयी ?

असल में संसार का यही नियम है। जुल्म की आंच में तप कर लोग इस्पात बन जाते हैं। उनकी कमजोरियां जल जाती हैं। जब चारों ओर से हारने के बाद ऊब कर मनुष्य जान पर खेल जाता और मतवाला (desperate) बन जाता है, तो उसके भीतर सोयी हुई शक्ति का स्रोत एकाएक उमड़ पड़ता है। शक्ति कहीं बाहर से नहीं आती। वह तो हमारे भीतर ही रहती है, ठीक जैसे दूध में घी रहता और दीख नहीं पड़ता है। मगर जिस प्रकार मथने से मक्खन के रूप में वह जमा होकर नजर आता है, ठीक उसी प्रकार जुल्म और अत्याचार की बार-बार की आवृत्ति प्रसुप्त शक्ति के लिए मथानी का काम करती है।

प्रचंड निराशा के बाद जब "मरता क्या न करता" के अनुसार हम जान पर खेलते हैं, तो वह शक्ति अनायास आगे आकर दुर्गा की तरह हमारी मदद करती और शत्रु को पछाड़ती है। हिन्दू लोग जो मानते हैं कि कलियुग के बाद सत्ययुग आता है, उसका यही अर्थ है। पहले दर्जे के परस्पर विरोधी पदार्थ मिल जाते हैं (extremes meet)। इस अंग्रेजी कहावत का भी यही आशय है।

इसी नियम के अनुसार आखिर सोनबरसा के किसान भी तैयार हो ही गये। गंगा के दियारे की जमीन का झगड़ा था। हजारों बीघे फर्स्ट क्लास की जमीन थी। वह तो सोना थी। किसान कहते कि जमीन हमारी है, गांव वालों की है; साहब के मैनेजर कहते कि यह तो साहब की है। सब उपाय करके किसान थक गये। मगर नतीजा कुछ न हुआ। साहब टस से मस न हुए।

बेशक, कानून तो है। मगर पीड़ितों के लिए तो वह ठीक वैसे ही है, जैसे कि वन में पका बेल बानर के लिए! गरीबों की आखिर कानून मदद ही क्या करेगा? वह तो अमीरों और धनियों के लिए है। कचहरियां उन्हीं की, हाकिम उन्हीं की बातें आसानी से सुनते, बड़े-बड़े वकील-बैरिस्टर उन्हीं को मिलते और पुलिस तथा फौज उन्हीं की सहायता के लिए चटपट पहुंच जाती है। इसीलिए कहते हैं कि रुपया कानून की छाती पर कोदों दलता है: "Money rules the law"। फलतः, इस झमेले में पड़ कर किसान सिर्फ घर का आटा गीला करते हैं। उनके हाथ कुछ लगता नहीं। जहां देखो रुपये की पूछ है और यही चीज गरीबों के पास नहीं होती।

थाने से ही पैसे का प्रसंग शुरू होकर ठेठ ऊपर तक चला जाता है!

निरुपाय होकर गांव के सभी किसान एक दिन एकत्र हुए और सोचने लगे कि क्या किया जाय और उस जमीन पर अपना कब्जा कैसे जमाया जाय। देर भी नहीं कर सकते थे क्योंकि जमीन पर जंगल की तरह सरसों लगी थी और पक चुकी थी, जो देर होने से गिर कर खत्म हो जाती। सभी उदास थे। कोई अक्ल न चलती थी।

इतने में श्री रामरूप कुमर नामक एक गठीले, पर अपढ़, किसान

ने कहा कि हम तो हजारों हैं और साहब हैं अकेले। नौकर-चाकर मिला कर पचास-सौ होंगे। यदि पुलिस या फौज लायें तो ज्यादा से ज्यादा दो-तीन सौ हो जायेंगे। फिर भी तो हम उनसे कई गुना रहेंगे। ऐसी हालत में चलो जान पर खेल कर सभी चलें और सरसों काट लें। आखिर भूखों मरने से और दवा या वस्त्र के बिना घुलघुल कर जान देने से तो अच्छा है कि या तो सरसों काट कर घर में धरें या गोली के घाट उतर जायें। मर जाने पर तो भूख, प्यास, बीमारी, जाड़ा, आदि, सभी से पिंड छूट ही जायगा। यदि जेल चले गये, तो वहां भी हमारे मकान से कहीं सुन्दर पक्का मकान, हमारे खाने से लाख दर्जे अच्छा खाना, और हमारे कपड़ों से कई गुना अधिक और अच्छा कपड़ा मिलेगा ही। वहां तो दवा भी मिलेगी। यहां तो मर जाते हैं और कोई पूछने वाला नहीं! फिर पर्वाह किसकी? असल में हमारा शत्रु यह भय ही है और इसे ही मार भगाना हमारा पहला फर्ज है। जो मौत और जो जेल इतनी अच्छी चीजें हैं, जो हमारी हजार दिक्कतों की आसान दवाइयां हैं, उन्हीं से भय?

सब की आंखें अकस्मात खुल गयीं और मालूम पड़ा कि समस्या सुलझ गयी। सबके कलेजे बांसों उछल पड़े और सबों में मुर्दानगी की जगह मर्दानगी उमड़ पड़ी। सभी बोल उठे कि ठीक है, ठीक है, अब लिया, तब लिया। अब तो मामला सर ही है। फिर रामरूप ने ही प्रश्न किया—मान लीजिए जमीन पर कब्जा हो गया, तो भी बंटबारे के समय दिक्कत होगी और हम लोग आपस में ही झगड़ पड़ेंगे। फिर तो बना बनाया काम चौपट हो जायगा और साहब की बन आयेगी। आखिर आज तक वह हमारी ही फूट के बल पर बैठा है न? वह तो पुनरपि उसी फूट और आपसी कलह से लाभ उठायेगा और बिल्लियों के झगड़े में बन्दर बनेगा।

एक बात और। जब हमें साहब जैसे जबर्दस्त शत्रु से भिड़ना और उसे अच्छी तरह पछाड़ना है, तो पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए। लाठी चलाने की नौबत होगी, जेल जाना होगा, मरना होगा, रुपये खर्चने होंगे और समय-समय पर अनेक ऐसे ही काम करने होंगे। कब कौन, कितने

आदमी, कितने रुपये या कितना सामान देगा इसका भी निपटारा अभी हो जाना चाहिए ताकि निश्चिन्त होकर हमारी लड़ाई चले—नहीं तो बीच में ही गडबड़ी होगी और आग लगने पर कुआं खोदने का सवाल पैदा हो सकता है।

यह बात भी सभी को पसन्द आयी और सबने कहा —भाई रामरूप जी, आप ही यह गुत्थी भी सुलझाइये और आज से आप ही हमारे नेता बनिये। हमने मंगनी और उधार के बाहरी नेता बहुत देखे। मगर कुछ हुआ-हवाया नहीं। वे पढ़े-लिखे जरूर होते हैं, और आप अपढ़ हैं। मगर आखिर गेहूं, चावल, चना, घी, मलाई आप ही और हम ही तो पैदा करते हैं न ? भलेमानस, ये पढ़े-लिखे कब ऐसा करते हैं ? वे तो हमारी कमाई का ही घी-हलुवा खाकर, लेक्चरों और बड़ी-बड़ी बातों के जरिये, सिर्फ उसकी बदहजमी मिटाते हैं। आखिर शरीर से कोई काम तो वे लोग करते नहीं, यहां तक कि पैदल घूमते-फिरते भी नहीं। टहलने भी चलते हैं तो उनके बजाय प्रायः उनकी मोटर या घोड़ागाड़ी ही टहलती है। फिर ये चीजें पचें तो कैसे ? इसीलिए उन्हें लेक्चर देना पड़ता है। उससे "एक पंथ दो काज" होता है। अन्न की बदहजमी के साथ ही अक्ल की बदहजमी मिट जाती है। यदि न बोलें तो उनकी बहुत ज्यादा पढ़ी-लिखी बुद्धि उनके पेट और दिमाग के भीतर ही उछल-कूद मचाती रहती है। लेकिन हम तो अपनी मोटी बुद्धि से यही जानते हैं कि हजार लेक्चरों से न तो एक दाना गेहूं, चावल पैदा होता है और न पैसे भर घी, दूध। और इन चीजों के बिना तो दुनिया का, उन नेताओं का खुद भी, काम ही नहीं चलता। लेक्चर के बिना तो कोई भूखों मरता नहीं। इसलिए हम लोग ही अच्छे। इसीलिए हम चाहते हैं कि अब गेहूं, घी, दूध की तरह नेता और लीडर भी हम अपने ही बीच पैदा करें। तभी हमारा निस्तार होगा। हमारे कष्टों को हमारा ही आदमी समझ सकता है। बाहरी क्या समझेंगे ? "जाके पांव न फटे बिवाई। सो क्या जाने पीर पराई ?" सब कुछ पैदा करके भी भूखों हम मरते हैं, या हमारे नेता ? फिर वे क्या समझने लगे कि हमें क्या तकलीफें हैं ? इसलिए हमारा नेता हम में से होना चाहिए।

सभी को यह बात अच्छी लगी और हां, हां, बोल बैठे सबके सब। तब रामरूप ने कहना शुरू किया—आज त्याग और बलिदान का समय है। हो सकता है, इस समय "सबसे ज्यादा त्याग हम करेंगे, हम करेंगे" ऐसी होड़ या ऐसी प्रतियोगिता दुर्भाग्य से हममें परस्पर न हो, और बलिदान में बड़ा हिस्सेदार बनने को शायद कोई तैयार न हो। फिर भी जमीन मिलने पर तो जरूर ही "हम धनी हैं, बड़े हैं, इसलिए हमें ज्यादा मिले और फलां आदमी गरीब है, उसे कम मिले"; "हमारे पास ज्यादा हल-बैल हैं और हमारा परिवार भी बड़ा है, मगर अमुक सज्जन के पास इन दोनों बातों में एक भी नहीं है, इसलिए हमें ज्यादा और उन्हें कम जमीन मिले"; ये बातें उठेंगी। इसलिए मैं चाहता हूं कि आदमी और परिवार का ख्याल न करके, सिर्फ हल-बैलों के विचार से शुरू से ही हिस्सेदारी तय कर दी जाय। यह सच भी है कि आखिर जमीन जोती जाती है हल-बैलों से ही, न कि धन और परिवार से। इसलिए आज ही हम क्यों न तय कर लें कि ये हल ही हिस्सेदार हैं? फिर गांव भर के हलों को, या फी हल दो बैल के हिसाब से बैलों को ही, गिन कर हिस्सेदारों की संख्या यहीं पर हम निश्चित क्यों न कर लें? आगे जब-जब रुपये की जरूरत हो, लाठी चलाने वालों का काम पड़े, जेल-यात्रियों की आवश्यकता हो, या मौत के आलिंगन का मौका आये, तो इन्हीं हलों के हिसाब से सभी लोग अपना हिस्सा बे-खटके क्यों न चुकाया करें?

यह बात भी सबने पसन्द की और कहा—भाई रामरूप जी ने तो आज सचमुच ही वास्तविक किसान नेता होने का परिचय दे दिया। उन्होंने हमारी सारी उलझनें सुलझा दीं। भला यदि कोई बाहरी नेता होता, तो ये भीतरी बातें क्या समझता? यह सुलझन और यह रास्ता तो ठीक हमारे ही लायक है। ओह! इसे हम कितनी आसानी से समझ गये! बस, अब कोई भी तितिम्मा और बखेड़ा आगे खड़ा होगा ही नहीं। सचमुच ही लड़ाई में तो बड़ा हिस्सा कोई भी नहीं लेना चाहता। यही मानव स्वभाव है। मगर जमीन के बंटवारे के समय अवश्य ही यह तूफान खड़ा होता, जिसका समाधान हमारे भाई ने, हमारे नेता ने,

कर दिया। हम तो हल के हिसाब से ही त्याग और बलिदान में हिस्सा लेते-लेते इसी हिस्सेदारी के अभ्यासी बन जायेंगे क्योंकि इसमें समय लगेगा। जल्दी तो यह झमेला निपटेगा नहीं। आखिर ग्रान्ट साहब कोई साग-मूली तो हैं नहीं कि जल्दी ही हम लोग उन्हें आसानी से गटक जायेंगे, या वह स्वयं मुर्झा जायेंगे। हमें तो लोहे के चने चबाना होगा। अतः इसके लिए अभी से तैयार हो जाना चाहिए। ऐसी दशा में हम खाम-खाह इस हल वाली हिस्सेदारी के अभ्यस्त हो जायेंगे। फलतः बटवारे के समय न तो किसी को खयाल ही होगा और न हिम्मत ही होगी कि ज्यादा या कम का दावा करे!

इसके बाद फौरन हलों की गिनती की गयी। सारे गांव में कुल साढ़े तीन सौ हल ठहरे। बस, ये ही साढ़े तीन सौ हिस्सेदार ठहराये गये और उस दिन सभा बर्खास्त हुई।

मगर यह बात छिपने वाली तो थी नहीं। साहब के दलाल और टुकड़खोर फौरन कोठी में पहुंचे और उन्होंने सारी दास्तान उन्हें सुना दी। साहब भी हैरान थे कि यह क्या हो गया! न कोई नेता आया और न मीटिंग वगैरा हुई, फिर एकाएक यह क्या हो गया? उनके दिमाग में यह बात आ ही न सकी। उनका होश-हवास उड़-सा गया।

उन्हें ताज्जुब हुआ कि रूस की सोवियत प्रथा एकाएक कैसे टपक पड़ी? किसने यह फितूर पैदा किया? उन्होंने सोचा कि चुपके से कोई बाहरी आदमी खामखाह आया और वह या तो गांव में ही ठहरा है या यह मंत्र देकर चला गया।

उन्होंने अपने जासूसों और दलालों से रह-रह कर पूछना शुरू किया—सच बताओ, कोई बाहरी आदमी आया था या नहीं? सबने एक स्वर से नाहीं की। साहब को विश्वास न हुआ और सैकड़ों ढंग से जांचा-पूछा। मगर आखिर कोई आया हो तब न! लोगों ने कहा कि नेता या बहकाने वाले कोई सुई थोड़े ही हैं कि जो ही चाहेगा छिपा कर रख लेगा।

बात भी तो ठीक ही है। मगर पूंजीवालों, जमीदारों, या गैरों पर शासन करने वालों के दिमाग में तो सदा यही खब्त सवार रहता है

कि पीड़ितों को—किसानों, मजदूरों और दूसरे कमाने वालों को—बाहरी लोग ही भड़काते और बहकाते हैं। नहीं तो ये बेचारे तो सीधे-सादे होते हैं। ये तो कभी भी धनियों, जमीदारों या सरकार का विरोध करना जानते ही नहीं।

इन शासक और शोषक भलेमानसों के दिमाग में यह मोटी बात आती ही नहीं कि जिसे बीमारी होती है वह स्वयं दवा के लिए चिल्लाता है। जो भूखा-प्यासा होता है, वह खुद अन्न-पानी की पुकार मचाता है। आखिर किसान-मजदूर भूखे-नंगे तो होते ही हैं। बीमारियों में कीड़े-मकोड़ों की तरह वे ही हजारों मर भी जाते हैं, न कि नेता। शोषक यह भी नहीं सोच सकते कि तेज भूख लगने और भयंकर दर्द पैदा होने पर कुम्भकर्णी नींद भी टूट ही जाती है। सोये हुए लोग भी भूख और दर्द की शान्ति का उपाय ढूंढ़ने लगते हैं। वे खुद डाक्टरों को बुलाते हैं। न मिलने पर कोई न कोई रास्ता निकालते ही हैं। जादू-टोना और जंतर-मंतर की सृष्टि इसी आतुरता, और अन्य उपाय न मिलने, का ही तो फल है। कहते भी हैं कि जरूरत आविष्कारों की जननी है : "Necessity is the mother of invention".

शोषितों और मजलूमों की जरूरतों ने ही नेताओं को पैदा किया है, न कि नेताओं ने जरूरतें पैदा की हैं। इसीलिए बाहरी नेताओं पर रोक लग जाने पर मजलूमों के भीतर से ही उनके नेता पैदा होते हैं। वे ही धुआंधार लड़ाई चलाते भी हैं। बाहरी नेता तो सुलह-सपाटे की बात भी सोचते हैं, मगर उनके भीतर के नेता तो एक ही बात जानते हैं कि या तो पीड़ित और शोषित ही रहेंगे, या उनके लूटने वाले ही ! दोनों तो रह नहीं सकते, क्योंकि बाहरी नेताओं की तरह किताबें पढ़ कर तो सब बातें वे जानते नहीं। वे तो स्वयं भुक्तभोगी होते हैं।

यह भी स्वाभाविक ही है कि बीमार या भूखा आदमी रोग और भूख के साथ समझौता करने की बात सोच ही नहीं सकता। किसान और मजदूर यह बखूबी जानते हैं कि उनकी बीमारी और उनकी भूख के कारण कौन हैं, उनकी कमाई को कौन लूटते हैं। इसमें किसी बाहरी आदमी के समझाने की जरूरत ही नहीं।

इसलिए, आखिर मिस्टर ग्रान्ट को मानना ही पड़ा कि गांव वालों ने बिना किसी बाहरी इशारे या मदद के खुद-ब-खुद यह काम किया है और अब हमें सिर्फ उन्हीं से सीधे लड़ना होगा। यह काम जरा कठिन है, यह भी वह समझने लगे। बाहरी लोगों पर तो कोई रोक मजिस्टर साहब या पुलिस के जरिये लगा कर ही आसानी से काम चल जाता है। और नहीं हुआ तो सहस्रमुखी कानून की किसी धारा में ही लाकर उन्हें पकड़वा दिया। वे होते भी हैं एक-दो ही।

मगर यहां तो आफत है। सैकड़ों हैं, हजारों हैं; गांव का गांव ही है। फिर इन पर कोई नोटिस भी तो आसानी से नहीं लग सकती है।

बहुत सोच-साच कर अन्त में उन्होंने तय किया कि हथियारबन्द पुलिस लाकर ही उन्हें रोक सकते हैं, हालांकि इसमें खर्च काफी होगा—स्थानीय पुलिस थोड़े ही है कि बिना कौड़ी खर्चे ही दौड़ी चली आयेगी। हथियारबन्द पुलिस के लाने में तो पास के पैसे कटेंगे। मगर किया क्या जाय? मजबूरी है।

उसने यह भी सोचा कि जब इस प्रकार संगठन है, तो हथियारबन्द जवान भी तो आखिर किसानों के ही बच्चे, सो भी इसी जिले या प्रान्त के हैं। कहीं वे भी न किसानों में मिल जायें! इसलिए हथियारबन्द गोरखे (नेपाली) ही लाना ठीक है।

इसके बाद, फौरन मजिस्ट्रेट के पास खुद ही पहुंचे और सारी कहानी सुना कर बारह गोरखों की मंजूरी ली। वे रवाना भी हो गये। साहब ने समझा कि इसी बार इन बिगड़े दिमाग वालों को सदा के लिए दुरुस्त कर ही छोड़ेंगे, नहीं तो रह-रह कर यह बला सिर उठाती ही रहेगी।

इधर किसानों को भी सब बातें मालूम हो गयीं। उन्होंने भी देखा कि मामला बेढब है!

इतने में खबर लगी कि हथियारों से लैस गोरखे यह आये, वह आये। अन्त में सचमुच ही ऐन गंगा की करारी धारा के किनारे उसी झगड़े वाली जमीन के पास वे लोग पहुंच भी गये।

सोनबरसा में सनसनी थी। घबराहट भी थी। मगर रामरूप कुमर

बेफिक्र थे। जब किसानों ने यह खबर उन्हें दी, तो उन्होंने कहा कि फी हल तीन-तीन आदमी के हिसाब से फौरन कम-से-कम एक हजार आदमी कमरबन्द जमा हो जायें।

लेकिन असल सवाल तो यह था कि राइफलों और बन्दूकों के सामने खाली हाथ या लाठी लिये ये हजार आदमी आखिर करेंगे ही क्या ? ये तो बकरे की तरह केवल बलिदान हो जायेंगे। इसका क्या उपाय?

रामरूप ने कहा—उपाय जरूर होगा। घबराने की क्या बात ? हम तो देहाती किसान हैं और उपाय भी वैसा ही करेंगे जो देहाती हो, सुलभ हो।

मगर लोग अचम्भे में थे। उनके दिमाग में यह बात आती न थी कि राइफलों और बन्दूकों के मुकाबले देहाती पदार्थ क्या हो सकता है ! यही कानाफूसी चारों ओर हो रही थी।

तब तक रामरूप ने कहा कि हमारे गांव में सूखे बांस तो कटे-कटाये बहुत होंगे और होंगे पचासों हाथ लम्बे भी। सभी ने कहा—बांसों की क्या कमी ?

—और किरासन का तेल और फटे-पुराने कपड़े ?

उत्तर मिला—ये दोनों भी जितना चाहिए मिल सकते हैं।

इस पर रामरूप ने हुक्म दिया—बात की बात में सैकड़ों बांस, किरासन तेल और फटे-पुराने कपड़े खूब जमा किये जायें !

लोगों ने सुनते ही, पलक मारते, तीनों चीजों का ढेर लगा दिया।

फिर हुक्म हुआ कि पचास बांसों के पतले छोरों पर ये कपड़े खूब ज्यादा लपेटे जायें, ताकि घंटों जलते रहें और खत्म न हों।

लोग ताज्जुब में थे कि इस होली का क्या मतलब ? इससे गोरखों की राइफलें कैसे मानेंगीं ? मगर अपने नेता की आज्ञा फौरन पूरी की गयी।

फिर, सभी बांसों के कपड़े किरासन तेल से तर कर दिये गये।

अब रामरूप ने कहा—हजारों आदमी तैयार हो जायें मुकाम पर चलने के लिए ! याद रहे कि सरसों काटने के लिए सब के पास एक-एक हंसिया भी जरूर रहे !

बात की बात में सब लोग तैयार हो गये। उसके बाद हरेक बांस के कपड़े में आग लगा दी गयी और "इन्कलाब जिन्दाबाद" के नारों के साथ दस-दस बीस-बीस आदमियों ने, जैसा कि रामरूप ने कहा, एक-एक बांस उठा लिया और उन सबों के जलते सिरे आगे करके सभी रवाना हो गये। दिन में एक साथ पचास बांसों से निकलने वाली लपट सभी को चकाचौंध में डालने वाली हो गयी।

किसान फिर भी आश्चर्य में थे कि यह क्या तमाशा है !

पलक मारते ही गांव से निकल उस जमीन के नजदीक वे लोग जा पहुंचे, जहां हथियारबन्द गोरखे तैनात थे। दूर से साहब भी देख रहे थे। उन लोगों ने एक साथ पचासों लुक्काड़ जलते देख सोचा कि यह क्या? हजारों आदमी तो लुक्काड़ के पीछे थे। उनका गिरोह साफ नजर आता न था। न तो गोरखे और न साहब ही इसका रहस्य समझ सके। फलतः घबरा गये। क्या करें, क्या न करें—वे लोग इसी आगा-पीछा में थे।

राइफलें या बन्दूकें सीधी भी न कर सके थे कि लुक्काड़ों वाला दल उनके पास आ गया। अब तो घबरा कर भागने की सोचने लगे क्योंकि हजारों के बीच जान का खतरा था। राइफल या बन्दूक ठीक-ठीक चला सकना भी असंभव था। साहब तो जरा दूर थे। इसलिए वह तो भाग गये। मगर हक्के-बक्के गोरखों की क्या दशा हुई, इसका कोई प्रमाण न मिल सका। इतना सभी कहते हैं कि वे लापता हो गये।

कुछ का कहना है कि जान बचाने के लिए सभी गंगा में कूद गये और डूब गये, क्योंकि धारा बहुत तेज थी, गहराई भी काफी थी। दूसरों ने कहा कि किसानों ने ही सबों को उठा कर बीच धारा में फेंक दिया और सभी डूब मरे। यह भी खयाल है कि तैरते-तैरते सभी, या कुछ लोग, कहीं दूर जा निकले और बच गये। मगर इतना सही है कि जिस काम के लिए वे आये थे वह तो नहीं ही हुआ। किसानों ने उनकी राइफलों एवं बन्दूकों का यह बहुत ही सुन्दर देहाती, पर लासानी, जवाब ढूंढ़ निकाला ! अपढ़ देहाती दिमाग ऐसे ही होते हैं, बशर्ते कि मन में पक्का-पक्की ठान लें !

इस प्रकार बिना एक बूंद रक्त बहाये, एक लाठी या गोली खाये,

और एक भी जान दिये—किसानों की विजय हुई। फौरन ही सारी की सारी सरसों उन्होंने काट कर घर पहुंचा दी। देर होने में खतरा था कि साहब कोई और तूफान करता और वह खेत में ही पड़ी रह जाती।

अब तो पचासों हजार रुपये की सम्पत्ति किसानों के घर जा पहुंची। वे उन्हीं रुपयों से साहब से बहुत दिनों तक निपट सकते थे। कई हजार आदमियों को सारी सरसों काटने और ढोने में देर भी न लगी। हाथों-हाथ काम हो गया। यही तो सामूहिक शक्ति की महिमा है। अलग-अलग काटते तो न जाने कितनी देर होती और कितने पचड़े खड़े हो जाते !

उधर साहब की जान तो बची, मगर समूची कोशिश विफल हो जाने से उन्हें मर्मान्तक वेदना हुई। खून-खराबी वगैरा का केस भी नहीं कर सकते थे। सबूत ही क्या था ? गोरखे मरे या बचे इसका कोई प्रमाण तो था नहीं। फिर, किसने किसको मारा, यह भी बताने वाला कोई नहीं था। वहां तो जादू का काम हुआ और रामरूप की गंवार बुद्धि ने बाजी मार ली।

साहब ने पीछे हजार कोशिशें की कि किसानों को फंसायें। गोरखों के खून को साबित करने के लिए उन्होंने आकाश-पाताल एक कर दिया। बहुत छान-बीन की गयी। खूब दौड़-धूप हुई। मगर नतीजा कुछ न निकला। सोनबरसा का एक कुत्ता भी साहब की ओर से न भौंकता था। पास-पड़ोस के लोग भी साहब से खुश थोड़े ही थे; समय-समय पर उसने सबों को परेशान जो किया था !

जो उनसे खूब हिले-मिले थे, वे भी किसानों की अभूतपूर्व विजय से अत्यन्त प्रभावित थे। फलतः, उनके विरुद्ध जबान हिलाने की हिम्मत न कर सकते थे।

असल में विजय का परिणाम ऐसा ही होता है कि शत्रु भी विरोध में कुछ करने को तैयार नहीं हो सकते। समस्त वायुमंडल ही बदल कर कुछ और हो जाता है। इसीलिए तो कहते हैं कि जीतने वाले के साथी सभी हो जाते हैं, पर हारने वाले के कोई नहीं।

इस प्रकार, श्री रामरूप जी के नेतृत्व में किसानों ने उस जमीन

पर दखल जमा लिया। साहब की हिम्मत ही न हो सकी कि पास आयें। गांव में जो लोग भीतर से उनके साथी थे, वे भी अपूर्व विजय और निराले संगठन को देख कर दब गये। पीछे चल कर सारी की सारी जमीन साढ़े तीन सौ हलों में बराबर बांट दी गयी। किसी ने कुछ भी चीं-चपड़ न की। सबने खुशी-खुशी अपना-अपना हिस्सा स्वीकार कर लिया।

उसके बाद, जब कभी भी मुकदमा लड़ने या लाठी चलाने की नौबत हुई, तो हलों के हिसाब से अनायास ही काफी रुपये और काफी जवान जमा हो जाते थे। फिर तो विजय ही विजय थी।

एक बार मैं वहां गया था। मेरा सामान दूसरी जगह पहुंचाने के लिए बैलगाड़ी की जरूरत हुई। किसी ने श्री रामरूप कुमर से कहा। फिर क्या था। साढ़े तीन सौ गाड़ियां आने की नौबत हो गयी। मगर हमने रोका कि जरूरत ही क्या है!

हमने जब-जब रामरूप को देखा तब-तब हम खुश हुए। पूर्ण शान्त और तगड़ा जवान, हंस कर बोलने वाला। किसानों को ऐसा ही लीडर चाहिए, न कि हम लोगों जैसे बातूनी और ढपोरशंख।

सोनबरसा का यह संगठन दुर्भेद्य चक्रव्यूह था, जिसके भीतर किसान अकंटक राज्य करते थे। पीछे सुना कि बहुत दिनों के बाद गांव के कुछ धनियों को घूस देकर साहब ने फोड़ा और किसानों पर जैसे-तैसे केस चलवाये।

मगर ग्रान्ट साहब और उनकी जमींदारी तकुवे की तरह सीधी तो हो ही गयी!

●

: २ :

गया जिले के कुर्था थाने में मुहम्मदपुर नाम का एक गांव है। वहां श्री दशरथ सिंह आदि बहुत से किसान बसते हैं। घटना बहुत दिन पहले की है। उनके जमीदार पड़ोस के ही लारी मौजे के श्री आदित्य प्रसाद सिंह, श्री प्रकाल सिंह, वगैरा हैं। मुहम्मदपुर से दो ही तीन मील दूर लारी है। किसान लोग बराबर पैसे-पैसे लगान चुकता कर देते थे। वे जमीदारों से छपी हुई रसीद लिया करते थे। कानून के अनुसार छपी-छपायी रसीद ही देना वाजिब भी है। मगर रसीदों में एक कानूनी कसर रह गयी थी जिसके करते आगे चल कर किसान काफी तबाह हुए।

असल में रसीद के ऊपर जमीदार का नाम वगैरा भी छपा रहना चाहिए। लेकिन बाजारू रसीदें ऐसी रहा करती हैं कि उनमें जमीदार का नाम नहीं छपा होता। ऐसी रसीदों में आसानी होती है और सस्ती मिलती हैं। फलत: साधारण जमीदार प्राय: उन्हें ही खरीद लेते और उन पर अपना नाम लिख कर किसानों को दिया करते हैं। यह आम बात है।

फिर भी कानून की दोहाई देने वाली सरकार तथा उसकी लाड़ली पुलिस इस अंधेरखाते को रोकती नहीं। उनकी आंखों के सामने यह गड़बड़ी बराबर चलती रहती है। किसान बेचारा तो नाम वाली बारीकी समझ नहीं सकता। वह तो छपी-छपायी रसीद देख कर ही सन्तुष्ट हो जाता है। यह भी चतुर किसानों की बात है।

लेकिन सीधे-सादे किसान तो या तो जमीदार के हाथ की नन्हीं-सी पुर्जी से ही सन्तोष करते हैं, या उसकी भी परवाह न करके जमीदारों पर ही विश्वास करते हैं। मैंने हजारों को कहते सुना है कि हमारे मालिक (जमीदार) बेईमानी थोड़े ही करेंगे!

उन्हें यह पता नहीं कि जमीदारी की जड़ ही बेईमानी और मुल्क के साथ गद्दारी (द्रोह) है। यह कायम ही हुई इसी तरह। किसान तो भूखों मरें, उनके बच्चे छटांक भर दूध के लिए बिलबिलायें, उनकी माता-बहनें चिथड़े पहन अर्द्ध-नग्न हो दिन काटें और दवा के बिना अकाल काल कवलित हो जायें। मगर उन्हीं की कमाई से जमीदार के कुत्ते दूध-घी में स्नान करें, उनकी तवायफें गुलछर्रे उड़ायें। और, सुन्दर से सुन्दर गेहूं, चावल तथा कपड़े घुन और कीड़े खा जायें। यह रोज की बात है।

मगर क्या यह इन्सान का काम है? क्या किसान और उसके कलेजे के टुकड़े नन्हे-नन्हे बच्चे जमीदारों के कुत्तों और कीड़े-मकोड़ों से भी गये-गुजरे हैं? नहीं तो फिर किसानों के पास ही वे लोग कुछ छोड़ क्यों नहीं देते? कौड़ी-कौड़ी लगान की—सूद और तावान के साथ—वसूली के लिए बेहाल क्यों रहते हैं?

फिर भी उन पर विश्वास करें? सो भी वे ही किसान जिनके साथ आये दिन अमानुषिकतापूर्ण व्यवहार!

ठीक वैसी ही बाजारू रसीद श्री दशरथ सिंह प्रभृत मुहम्मदपुर के किसानों के पास भी थी। मगर वह इसका रहस्य क्या समझें? फलतः निश्चिन्त थे।

इसी बीच ऐसा मौका आया कि किसी काम से कुछ किसान जमीदारों के घर गये थे। काम देने-पावने का ही था। बात ही बात में किसी बिगड़े दिल जमीदार ने किसानों को गाली दे दी। सौभाग्य या दुर्भाग्य से जमीदार और किसान एक ही बिरादरी के हैं। अतएव, बर्दाश्त न कर सके। ऐसा मौका यह पहला ही आया। फिर बर्दाश्त करते तो कैसे?

कुछ जातियों को हमने दबा रखा है। उन्हें नीच तथा कमीना भी नाम दे रखा है। उनका प्रसिद्ध नाम है 'रेयान' या 'रैयान'। बाकी लोग अपने को 'अशराफ' कहते हैं। दूसरे भी उन्हें ऐसा ही कहते हैं। अगर सिर्फ जमीदार ये दो भेद बना लेते तो खैर एक बात थी। मगर बदकिस्मती से किसानों के दिमाग में भी 'रैयान' शब्द घुस गया है।

मैंने फटे तथा विदीर्ण कलेजे को थाम कर किसानों को ही अपने हलवाहों-चरवाहों को 'रैयान' कहते सुना है। सच बात तो यह है कि किसानों के मुंह से यह शब्द सुन कर मुझे जो वेदना हुई है वह और मौकों पर शायद ही हुई हो। अपने ही पड़ोसियों और भाइयों को, जिनके बिना किसानों का काम एक मिनट भी नहीं चल सकता और जो उनके असली हाथ-पांव हैं, इस तरह घृणापूर्ण शब्दों से याद करना पागलपन की पराकाष्ठा है !

किसान याद रखें, एक दिन आयेगा, सो भी शीघ्र ही, जब ये ही "रैयान" उनकी और अपनी—दोनों की—लड़ाई जीतेंगे ! मेरा यह पक्का विश्वास है। सो भी अनुभव के आधार पर।

इसलिए अच्छा हो कि यह बुरी तरह चुभने वाला 'रैयान' शब्द संगठित रूप से किसान हटा दें और कभी इसे जबान पर न लाने का संकल्प कर लें।

खैर, तो दशरथ सिंह वगैरा 'रैयान' तो थे नहीं। तब गाली क्यों बर्दाश्त करते ? इसीलिए जमीदार का जवाब कुछ वैसे ही ढंग से उन्होंने भी चटपट दे दिया। बस, मामला बेढब हो गया। भला जमीदार यह चीज बर्दाश्त करे !

आम तौर से यही समझा जाता है कि जमीदारों की भी वही बिरादरी और वही धर्म होते हैं, जो किसानों के। मगर यह बात—यह खयाल—सरासर गलत है।

जमीदारों की नकली और दिखावटी जाति-बिरादरी भले ही किसानों से मिलती हो और धर्म भी भले ही वैसा ही हो, तो भी उनकी असल जाति और ही होती है और वह सबों की एक ही होती है। इसीलिए जहां किसी एक धर्म या जाति के जमीदारों ने किसानों के खिलाफ आवाज उठायी कि सभी जमीदार—बिना जाति और धर्म के विचार के—सियार की तरह हुआं-हुआं मिला देते हैं।

इसलिए उनकी बिरादरी एक है। धर्म भी एक ही है। वह किसानों से निराला ही है भी। ऊपरी धर्म और बिरादरी तो धोखे में डालने के लिए है। असल में जमीदारी, जोर-जुल्म और रुपया-पैसा यही

उनकी जाति है, यही उनका धर्म है। इसका नाश वे हर्गिज बर्दाश्त नहीं कर सकते। हां, ऊपरी जाति-धर्म भले ही नष्ट हो जाये, कोई पर्वाह नहीं। इसीलिए दशरथ सिंह प्रभृत की समझ गलत थी कि उनकी बिरादरी वही है जो जमीदारों की। यही कारण है कि जमीदारों ने उसी दम तय कर लिया कि किसानों को सबक सिखाया जाय ताकि ऐसा समझने की नादानी वे आइंदा कभी न करें।

किसान लोग तो लारी से घर चले गये। मगर जमीदारों ने सलाह की कि समूचे मुहम्मदपुर के किसानों पर चार साल के बकाया लगान की नालिश की जाय और उन्हें तबाह किया जाय। वे लोग लगान चुकती की रसीदें पेश करके मुकदमे को खारिज न करवा दें—इसलिए वही बाजारू रसीद वाला नुक्स निकाला गया। सोचा गया कि वे रसीदें इन्कार कर दी जायेंगी कि जाली हैं। कहेंगे, हम ऐसी रसीदें भला क्यों देने लगे? तब सवाल होगा कि अच्छा, तो आप लोग जो रसीदें देते हैं वे ही अदालत में पेश करें। मगर दूसरी रसीदें तो पास में हैं नहीं। ऐसी दशा में नालिश फिर गड़बड़ी में पड़ जायेगी। अगर नाम वाली रसीद अभी छपवा कर पेश भी करें तो गुजर नहीं, क्योंकि अदालत में तो पुरानी रसीदों की मांग होगी और वे तो असम्भव हैं।

इसके बाद वे लोग गया में एक वकील साहब के पास पहुंचे। वह उनमें से एक जमीदार के दामाद हैं, साथ ही किसानों के बड़े हिमायती माने जाते थे। आज भी तो उनका और उनके साथियों का ऐसा ही दावा है। उसके बाद किसानों के माथे सवार होकर वे बहुत आगे बढ़े भी हैं।

मगर, वकालत पेशा ही कुछ ऐसा है कि जरूरत पड़ने पर गुरु का भी गला काटने की सलाह वकील लोग दे सकते हैं। गंगा, तुलसी और बाइबिल, कुरान, उठवा कर झूठी कसमें तो रोज ही खिलवाते हैं। इस प्रकार, जब अपने भगवान और खुदा का ही गला काट डालते हैं तो किसान का गला तो बहुत ही नर्म है। उसको काटना बकरे के गले से भी आसान है।

किसानों की हिमायत भी तो अपना काम निकालने के लिए ही

थी। अपना काम बिगाड़ कर किसानों की भलाई के लिए हिमायत की जाती है—ऐसा जो किसान माने, वह मूर्ख है। वैसे, सच्चे हिमायती तो बिरले ही होते हैं।

खैर, वकील साहब की तो पांचों घी में हो आयीं। सम्बन्धी के सम्बन्धी और मुवक्किल के मुवक्किल मिले। उनके लिए तो सोने में सुगन्ध मिली। उन्होंने चटपट रास्ता सुझा ही तो दिया। राय दी कि किसी प्रेस वाले को कुछ ज्यादा पैसे देकर मिलाया जाय। वह रसीदें छाप कर अपने कागजों में पांच-सात वर्ष पहले दर्ज करे। फिर वे ही रसीदें पेश की जायें कि पुरानी हैं। सबूत में उस प्रेस वाले के पुराने रजिस्टर दाखिल हों जिनमें यह जालसाजी की गयी हो। काम तो आसान नहीं। मगर, पैसे से सब हो सकता है !

एक बात और भी की जाय, नहीं तो सब गुड़ गोबर हो जायगा। कुछ किसान मिलाये जायें। ये नयी रसीदें पांच-सात वर्ष की पुरानी तारीखों में काट कर उन्हें दी जायें और उन्हें राजी किया जाय—गवाही देने और उन्हें अदालत में पेश करने के लिए कि ये ही रसीदें वे पहले से पाते आ रहे हैं।

इस प्रकार सब षडयंत्र ठीक हो गया और पूरी तैयारी भी कर ली गयी।

मुहम्मदपुर के किसानों को तो मालूम नहीं कि उनका गला रेतने के लिए क्या-क्या हो रहा है। वे तो निश्चिन्त थे। इधर भीतर ही भीतर सारी तैयारी करके उन पर रेंट सूट (लगान का केस) दायर कर दिया गया। जब किसानों को इसकी नोटिस मिली तब वे चौंके कि यह क्या ? दौड़े-दौड़े गया पहुंचे। वहां से फिर जहानाबाद। वहां पता लगाया, तो बात सही निकली। फिर भी वे तो फूले थे कि रसीदें पेश कर देंगे, फलतः पहली पेशी में ही यह केस खत्म हो जायगा।

मगर, मुकदमा पेश होते ही पता चला कि बात कुछ और ही है। तारीखों पर तारीखें पड़ीं। किसानों ने बड़ी दौड़-धूप की। उन्होंने पैसे भी काफी खर्चे। मगर बन्दिश ऐसी पक्की थी कि उनकी एक न सुनी गयी और उनके खिलाफ पूरे दस हजार रुपये की डिग्री हो गयी !

हाकिम ने न तो किसानों के बयानों को ही माना और न उन रसीदों को ही। उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज साबित हुई। ये ही हैं आज के कानून और न्यायालय। भला गरीब और अपढ़ इनसे कब पार पा सकते हैं ?

अपील करने-कराते वे लोग हाईकोर्ट तक का दरवाजा खटखटा कर निराश हो गये ! डिग्री बहाल की बहाल रही। उल्टे और भी खर्च उस पर जुटता गया और सूद भी। किसानों का खर्च और उनकी परेशानी तो अलग थी ही।

कहते हैं कि वे लोग दो बार हाईकोर्ट तक पहुंच कर थक गये। इसके बाद गवर्नर के पास भी दरखास्तें गयीं। छोटे अफसरों का तो कहना ही क्या ? मगर नतीजा कुछ न हुआ, सुनवाई कहीं न हुई।

इतने में किसान सभा का जमाना आ गया। किसान पंडित यदुनन्दन शर्मा के पास गये और उन्हें लेकर मुझे भी पकड़ा कि जमीदारों से मेल-जोल करवा दें। वे वकील साहब तो हम दोनों के पूरे परिचित थे। जमीदारों से भी मेरा परिचय था। मैंने भी कोशिश की—केवल इसलिए कि किसानों को सन्तोष हो जाय।

वकील साहब तो चुप रहे, मगर जमीदारों ने मुझे खुश करने के लिए मेरे सामने बातें मान लीं और तय कर देने को कहा। तय क्या करना था। कुछ रकम छोड़ कर, कुछ की किस्तें कर देनी थीं।

लेकिन पीछे जमीदार लोग बदल गये। मैंने पत्र लिखा। मगर उत्तर नदारद !

तब हमने दशरथ सिंह को राय दी कि अब सीधी लड़ाई लड़ो; गांव पर किसान सभा का आश्रम खोल कर कुछ कार्यकर्ता रखो। इधर वे चारों ओर प्रचार और तैयारी करें, उधर तुम लोग अपने बाल-बच्चों के साथ आसपास के गांवों में जाकर सभी लोगों से हाथ जोड़ कर कह दो कि तुम्हारी जमीन नीलाम होने पर कोई लेने या जोतने को तैयार न हो; हमारे कार्यकर्ता भी इसमें सहायता करेंगे।

किसानों ने यही बात अक्षरशः की। फलतः देहात के किसानों पर असर हो गया कि सचमुच ये हमारे भाई हैं ; हम क्यों इनकी जमीन

छीनें ? जब आप खुद दुखी बन कर बाल-बच्चों के साथ किसानों के पास गिरिये, तो वे जरूर आप का साथ देंगे। ऐसा मैंने कई मौकों पर देखा है। यहां तक हुआ है कि जमीदारों ने बिना जमीन वाले मजदूरों को बुला कर किसानों की जमीन में से थोड़ी दी थी, बाकी में उन्हीं के द्वारा अपनी खेती करवाते थे। मगर जब मेरी राय मान कर किसान उन मजदूरों के पांवों पर पड़े, तो वे जमीन छोड़ कर चले गये और मजबूरन जमीदार ने जमीन फिर पुराने किसानों को ही दी।

परिणामस्वरूप जब मुहम्मदपुर की पूरे अस्सी बीघे जमीन नीलाम करवा कर जमीदारों ने दूसरे किसानों से आबाद करानी चाही, तो सब ने साफ इन्कार किया कि भाई की जमीन हम क्यों छीनें ? यहां तक कि सौ-सौ रुपये फी आदमी को देकर कुछ पाही किसान ग्वालों से उन्होंने खेती करवानी चाही। लेकिन साफ इन्कार !

वह जमीन गांव के सामने उससे मिली हुई पूर्व ओर है। उसमें बहुत अच्छा धान होता है। किसान लोग, नीलाम होने के बाद भी, उसे बराबर जोतते-बोते और फसल काटते रहे। जमीदार हैरान थे ! उनकी एक न चलती थी !

लाचार उन्होंने उस जमीन पर दफा १४४ की नोटिस करवायी। मगर नोटिस न तो तोप है, न तलवार, न लाठी और न कटीला तार, कि जमीन में जाना और खेती करना बन्द करवा दे। नोटिस के बाद भी तो जमीन पर पहले ही जैसे किसान का हल चलता है, चल सकता है, और धान वगैरा पैदा होता ही रहता है। तब फिर वे मानने और रुकने क्यों लगे ?

कहते हैं—खेत पर और आदमी पर नोटिस लग गयी ! मगर हजार रोशनी लेकर और कोशिश करके देखें, तो जमीन या आदमी पर वह नोटिस लगी हुई नजर आती नहीं ! वह तो सिर्फ हमारे गन्दे दिमाग में लग जाती है।

हां, यदि हक की बात हो तो मानें भी।

मगर उस जमीन पर हक तो असल में किसानों का ही था, और अगर रुपये तथा बुद्धि के बल पर कानून को जबर्दस्ती किसानों के विरुद्ध

किया जाय, तो किसानों का यह एकमात्र पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है कि उस कानून को न मानें—उसे मानने से साफ इन्कार कर दें। तभी कानूनों की छाती पर चलने वाली रुपये की यह चक्की बन्द हो सकती है। दूसरा रास्ता नहीं। जब तक ऐसा न होगा तब तक धनी, या जमीदार, जालफरेब तथा अन्याय के द्वारा उनका हक छीनने की कोशिश बन्द न करेंगे।

वहां के किसानों ने यही किया। नोटिस की परवाह न की और उस साल भी फसल तैयार करके काट ली!

जब अगले वर्ष भी किसानों ने फसल तैयार कर ली, तो काटने के पहले ही जमीदारों ने उसे जब्त करा कर पुलिस का एक अच्छा दल उसकी रखवाली के लिए तैनात करवा दिया! जमीदारों ने कहा—बोयें किसान और जब्त करवा-करवा कर काटें हम; बस इसी से वे लोग सर हो जायेंगे।

जमीदार भीतर ही भीतर खूब खुश थे कि भली तैयार फसल हाथ लगी। मगर किसान और हमारे कार्यकर्ता निश्चिन्त थे। उन्होंने तय कर लिया था कि चाहे कुछ हो, जमीदारों के हाथ फसल न लगने देंगे। फलतः सुबह, शाम, और दिन या रात में—जब भी मौका लगता, इधर-उधर से कुछ न कुछ धान वे लोग उड़ा ले जाते थे। जब जमीदार लोग जानबूझ कर बेईमानी पर उतर आये थे, तो फिर किसान क्यों नाहक युधिष्ठिर बनने का दावा करते? यह तो पहले दर्जे की नादानी होती। इसलिए मौका देख कर कुछ न कुछ बराबर नोचते रहते। रात में जब पुलिस-वाले सो जाते, तब खास तौर से काट लेते। काटते भी इस होशियारी से कि आसानी से मालूम तक न होता। बीच-बीच में से खींच लेते।

अधिकांश तो उन्होंने यह किया कि धान की फसल की मलाई ही निकाल ली और सिर्फ उसका डण्ठल ही खड़ा रहने दिया, ताकि दूर से देखने वाले समझें कि फसल खड़ी ही है। जब धान की प्रायः सभी अच्छी-अच्छी बालें खींच ली गयीं, तो डण्ठल और पुआल खड़ा रहने में हर्ज ही क्या था?

पुलिस ने कटवा कर फसल जब खलिहान में रखी, तो वहीं से धान

के बोझे और बंडल गायब हो गये। एक बंडल के चार बना कर एक रख दिये और तीन को गायब कर दिया। इससे बंडलों की गिनती में तो फर्क न पड़ा और असल माल जैसे चूहों के पेट में चला गया! आखिर ये सैकड़ों दोपाये चूहे दिन-रात लगे जो रहे! उन्हें नींद हराम जो थी! पुलिस भी तो आखिर किसानों के ही परिवारों से आती है। तो क्या उसे गरीबों पर दर्द नहीं होता? और अगर जरूरत होने से उसकी थोड़ी-बहुत पूजा-प्रतिष्ठा कर दी जाय, पत्रं-पुष्पं अर्पण कर दिया जाय, तो कहना ही क्या! बात तो यह है कि यदि सैकड़ों आदमी संकल्प करके किसी काम में पड़ जायें और चैन न लें, तो उसमें सफलता जरूर ही मिलती है। यही बात महमद (मुहम्मद) पुर में भी हुई।

अन्त में जब जमीदार ने धान को पुआल से अलग करवा कर साफ करवाया और तौला, तो कुल सवा सौ मन कच्ची तौल से धान निकला! जमीन थी पूरे अस्सी बीघे! उधर पुलिस लाने और महीनों रखने में पूरे नौ सौ रुपये खर्च हुए थे। धान मुश्किल से डेढ़-दो-सौ रुपये का हुआ होगा। बस, जमीदारों की हिम्मत खत्म थी! अगर इसी प्रकार दो-चार वर्ष लगातार किसानों की तैयार फसल जब्त करवाने और काटने का काम वे लोग जारी रखते, तो जमीदारी ही बिक जाती। इसलिए उन लोगों का हिसाब गलत निकला। इसे ही कहते हैं "सौ सुनार की और एक लुहार की।" उन्होंने हजारों रुपये खर्च करके धान लेने की तैयारी की, मगर किसानों ने अनायास ही उनके मन्सूबे पर पानी फेर दिया।

फलतः उन लोगों ने दशरथ सिंह वगैरा किसानों को खुद बुलावा कर कहा—जाइये, हम लोग हारे। आप लोग जीते। अब दस हजार रुपये की डिग्री, खर्च, इस बीच के कई साल का लगान, और पुलिस वगैरा लाने का खर्च, सब खत्म हुआ। आप लोग खेत जोतें और हमें भी हमारा मुनासिब हिस्सा देते रहें, यही कहना है।

किसान खुशी-खुशी घर आये। इस अपूर्व विजय पर खूब उत्सव मनाया गया। इसकी प्रसिद्धि देहात में चारों ओर हो गयी। इससे अन्य जमीदारों की भी हिम्मत टूट गयी।

इधर, सभी किसानों में आत्मविश्वास पैदा हो गया कि हम लोग

आसानी से जमीदारों को पछाड़ सकते हैं। कुछ दिनों बाद दशरथ सिंह ने मुझसे मिल कर यह खुशखबरी सुनायी। मैंने उन्हे बधाई दी।

मगर अब उन्होंने मुझसे यह कहा कि जमीदारों से कह कर उस अस्सी बीघे जमीन की रसीद हमारे नाम से कटवा दें क्योंकि जमीन तो नीलाम थी और जमीदार लोग किसानों से इधर जो गल्ला पाते थे उसकी रसीद देते न थे।

असल में, रसीद देने से उस जमीन पर किसानों का दखल साबित हो जाता और जमीदार यही बचाते थे; इसलिए दशरथ सिंह की यह प्रार्थना थी।

मैंने उत्तर दिया कि जमीदारों को आपने पछाड़ा है, न कि मैंने—आप लोगों को यह खूब समझना चाहिए। किसानों की भारी भूल यही है कि सब कुछ करते हैं खुद, मगर उसका श्रेय गैरों को—नेताओं को, भगवान को या तकदीर को—देते हैं! आप इस भूल को सुधारें। असल में हम लोग तो निमित्त मात्र हैं। करने वाले आप ही हैं। इसलिए आप ही जमीदारों से कहिए। वे डर कर रसीद जरूर देंगे।...मगर रसीद की जरूरत क्या है? जब रसीद मिलती थी, तभी तो यह जमीन चली गयी। आज तो आपने, अपने संगठन से, जमीदारों को हरा कर उसे पुनः प्राप्त किया है। अब, जब तक जमीदार शरारत न करें, उन्हें भी उचित भाग दीजिये और शेष स्वयं खाइये। लेकिन यदि वे गड़बड़ करें तो सब खा जाइये। वे कुछ न कर सकेंगे। जमीन आपके नाम पर अब है नहीं कि नालिश करेंगे। फिर नाहक रसीद क्यों चाहते हैं?

वे चले गये और तब से यही कर रहे हैं।

●

: ३ :

पटना जिले के सिलाव थाने में दरमपुरा नाम की एक छोटी सी बस्ती है। वहां कुछ ब्राह्मण और कुछ दूसरे किसान बसते हैं। वे गरीब हैं और जमीन जोत-बोकर ही गुजर करते आ रहे हैं। उस गांव के जमीदार मुहम्मद इद्रिस साहब दूसरे मौजे में बसते हैं, जो वहां से कुछ दूर है।

इद्रिस मियां ने उस गांव की अधिकांश जमीन नीलाम करवा कर बकाश्त बना ली थी। मगर उन्हीं किसानों को फिर बंटाई पर दे दी थी। खुद तो खेती कर सकते न थे। उसमें बंटाई की अपेक्षा फायदा भी न था। बंटाई' में आसानी यह थी कि जब खुशी हुई, एक से छीन कर दूसरे को दे दी। ज्यों ही किसान जरा भी खुशामद में चूका कि उसकी जमीन गयी!

कानून के अनुसार वह जमीन एक बार देकर फिर नहीं छीन सकते थे क्योंकि बकाश्त जमीन यदि उसी मौजे का किसान (Settled-raiyat) एक बार जोत ले, तो बिहार काश्तकारी कानून की २१वीं धारा के अनुसार, उस जमीन पर उसका कायमी हक हो जाता है; अतः अगर जमीदार उसे छीने तो अपराधी है। मगर किसान को कानून-फानून का क्या पता? और जमीदार को उसकी परवाह भी क्यों हो, जब किसान ही अन्धा ठहरा और अपना हक ही नहीं जानता?

इसलिए इद्रिस मियां की यह छीना-झपटी और तुम्बा-फेरी बराबर जारी रही। जो ज्यादा से ज्यादा रुपये या गल्ला देता, उसे ही जमीन देते थे।

इधर जब किसान सभा का जमाना आया और उसके करते किसानों की आंखें खुलीं, तो उन्होंने अपने हक पहचाने। खास कर बकाश्त जमीन वाली बात उन्हें खूब समझायी गयी। उन्हें तैयार भी किया गया कि

वे बकाश्त जमीनों को हर्गिज न छोड़ें। जगह-जगह किसान डटने भी लगे।

फिर तो इद्रिस मियां के कान खड़े हो गये। फलतः उन्होंने सभी बकाश्त जमीन दरमपुरा के किसानों से छीन ली। उन्होंने यह भी सोचा कि या तो खुद खेती करें या दूसरे गांवों के (पाही) किसानों को दें। पाही किसान के बारे में तो कानून है कि बिना लगातार बारह वर्ष उस गांव में खेती किये वह देही किसान (Settled raiyat) बन नहीं सकता और बिना देही बने बकाश्त जमीन पर कायमी हक हो ही नहीं सकता। उन्होंने यह भी सोचा कि न किसी पाही किसान को बारह वर्ष लगातार खेती करने देंगें, और न वह कायमी हक का दावेदार होगा।

उधर दरमपुरा वालों की तो भूखों मरने की नौबत आयी। वे हजार रोये-चिल्लाये और वचन देते रहे कि हम कोई दावा न करेंगे, मगर मियां जी सुनने वाले कब थे? वह तो जमाने की हवा देखते थे और काफी सजग थे।

यद्यपि जमीन छीनने का हक तो उन्हें नहीं था और अगर किसान डट जाते, तो वह मुश्किल में पड़ जाते—मगर किसानों में हिम्मत कहां थी कि डटें? सो भी, उस इलाके के किसान बहुत पिछड़े हुए थे। जमीदारों ने उन्हें काफी दबा रखा था। उधर छोटे जमीदार ज्यादा हैं। वे और भी ज्यादा जुल्म करते हैं। लोगों का ख्याल है कि छोटे-छोटे जमीदार तो गरीब होते हैं, वे जुल्म भी नहीं करते या नाम मात्र को ही करते हैं, इसलिए उनके ऊपर खास तौर से रहम होना चाहिए। मगर यह बात सरासर गलत है। मैंने तो देखा है कि छोटों का जुल्म अपेक्षाकृत कहीं ज्यादा है। यह ठीक है कि बड़े जमीदार हजारों और लाखों किसानों पर जुल्म करते हैं और अगर उनका सब जुल्म जमा कर दिया जाय, तो उसका पहाड़ बन सकता है। लेकिन यदि व्यक्तिगत किसानों को अलग-अलग देखा जाय, तो आम तौर से छोटे जमीदारों का अत्याचार कहीं बढ़ा-चढ़ा है। बड़े तो शायद ही ऐसे हों, जो लगान लेकर रसीद न देते हों। मगर छोटे तो शायद ही कोई रसीद देते हों।

सो भी, यदि कोई देता है तो बाजारू रसीद खरीद कर ही, जो कानूनन गलत है। मौके पर काम भी नहीं करती।

लेकिन भावली जमीन की रसीद तो कोई छोटा जमीदार देता ही नहीं। अगर भूल से किसी ने कभी दी भी, तो पांच मन गल्ले की जगह पचीस मन उस पर लिख कर देता है। कुछ जमीदारों ने एक बार दलील दी की कि भावली की रसीद रहने पर जब किसान उसे नकदी (cash) करने का दावा करेगा, तो लगान बहुत कम होगा। वह गल्ले की रसीद पेश कर देगा और उसी के अनुसार नकद लगान तय होगा, इसी से हम रसीद नहीं देते क्योंकि मौका आने पर हम कहेंगे कि हमें ज्यादा गल्ला मिलता है। जमीन बहुत अच्छी है। ज्यादा गल्ला लिख कर रसीद देने का भी यही मतलब है!

हरी, बेगारी, दूध, दही, घी, आदि, की बात तो पूछिये मत। यह तो छोटे जमीदारों का सनातन धर्म ही ठहरा। असल में छोटी लाल मिर्च जितनी कड़वी होती है, उतनी बड़ी नहीं। जितना तेज कुटकी या पिस्सू काटता है, उतना तेज मच्छर नहीं। मुहम्मद इद्रिस भी छोटे ही जमीदार हैं। इसीलिए किसानों को उन्होंने काफी तबाह किया है। जमीन नीलाम भी इसी तरह करवायी थी।

रसीद तो कभी देते न थे और जब भी जरा भी रंज होते तो चट चार साल के लगान की नालिश ठोंक कर जमीन ही नीलाम करवा लेते! जब मौरूसी और खतियानी (सर्वे खतियान में दर्ज) जमीन की ही रसीद देना उन्होंने नहीं सीखा, तो फिर बकाश्त की रसीद की क्या बात? इसीलिए उन्होंने सोचा कि यदि जबर्दस्ती यह जमीन छीन लें, तो किसान करेंगे ही क्या! उनके पास सबूत तो कोई है नहीं कि वे जमीनें जोतते थे।

उधर पुलिस और सरकार के घर में अन्धेरखाता ऐसा है कि वह कागजी सबूत और रसीद ही ढूंढ़ती है। वह तो इस मामूली अक्ल से भी काम लेना नहीं जानती कि जमीदार रसीद देकर बेवकूफी क्यों करेगा? यह सभी जानते हैं कि मौरूसी जमीन की भी रसीदें जब नहीं मिलती हैं, तो बकाश्त की कैसे मिलेंगी? मगर फिर भी रसीदें ढूंढ़ते

और नहीं रहने पर किसान को दुरदुराते हैं कि हटो, तुम्हारा दखल उस जमीन पर नहीं है ।

जिसे रसीद लिखने और देने का हक और इल्म है, वह तो देता नहीं । तो किसान क्या करे ? क्या अपना सिर फोड़े ?...उस पर भी तो सुनवायी नहीं !

मगर पास में रसीद न होने पर भी रसीद के बाप-दादे तो उसके पास हैं ही, जिन्हें हल, बैल, कुदाल, आदि, कहते हैं । हाकिम का काम है असलियत का पता लगाना । इसलिए उसे उचित है कि किसान के घर जाकर हल, बैल, आदि, देखे और पता लगाये कि इनसे वह कौन-सी जमीन जोतता है । आखिर अपना घर, जमींदार और सरकार की कचहरी या पुलिस का थाना तो जोतता न होगा । और, जब दूसरी जमीन उसके पास है नहीं, तो खामखाह वह बकाश्त जमीन ही जोतता होगा । बैलों से तो दूध भी नहीं दुहा जा सकता कि उसी वास्ते पाले गये हों । वह खुफिया गवाही भी ले सकता है ।

मगर ये मोटी और साफ बातें छोड़, उसे केवल रसीद की फिक्र रहती है । पांच हाथ का हल और हेंगा (चौकी) छोड़ कर चार अंगुल का कागज ही उसके लिए भारी सबूत है । यह भी ख्याल नहीं होता कि रसीद पर न तो हल ही चलता है और न खेती ही होती है । खेती तो खेत में होती है । सो भी हल-बैलों से ही । फिर रसीद के लिए परेशानी क्यों ?

इस प्रकार जब किसानों को कोई आसरा न रहा, तो हार कर किसान सभा के कार्यकर्ताओं के पास पहुंचे । उन्हें सारा दुखड़ा कह सुनाया । उनका तो काम ही था किसानों का पथ-प्रदर्शन करना और जहां तक हो सके उनकी सहायता करना ।

उन्होंने किसानों को राय दी कि जमीन पर डट जाओ । शान्ति-पूर्वक वहीं मरो-मिटो । दूसरा उपाय है नहीं । अगर तुम लोगों ने यह तय कर लिया कि जब तक तुम्हारी और तुम्हारे बाल-बच्चों की छाती पर से जमींदार या उसके आदमियों का या गैर किसानों का हल गुजर नहीं लेगा, तब तक खेत न जोतने दिया जायगा—तो विजय तुम्हारी

होगी। केवल चुपचाप खेत में सपरिवार पड़ जाना और किसी भी हालत में न हटना ; यही तुम्हारा काम होना चाहिए। अच्छा है, सभी वहीं मर जायेंगे तो खाने-पीने का प्रश्न सदा के लिए जाता रहेगा। जमीदार से भी कह देना चाहिए कि खून की खाद सबसे अच्छी बतायी जाती है ; इसलिए हमारा खून खेत में बहा कर चलते-चलाते उसे पैदावार बना लीजिए। मगर सभी लोगों को—स्त्री, पुरुष, बच्चों को—ऐसा करना होगा। तभी जीत होगी। अगर फसल तैयार हो, तो काटने के समय ही छेंक कर पड़ जाओ।

किसानों के पास भी दूसरा रास्ता न था। अतः, बातें मान कर चले गये।

किसानों की बोई धान की फसल तैयार थी। जमीदार ने उसे अपनी बता, काटना शुरू किया। जब किसान रोकने गये, तो दफा १४४ की नोटिस उन पर करवा दी! जब उसे न मान कर खेत पर धरना देने गये, तो पुलिस के द्वारा पकड़वा कर सबों को—मर्दों को—जेल भिजवा दिया और फसल काट कर खलिहान में जमा की।

अब औरतों और बच्चों की बारी आयी। औरतें तो ब्राह्मण कुल की ठहरीं। उनमें सबसे समझदार औरत को सीताराम कहते हैं। उसने ही औरतों का नेतृत्व किया। सभी औरतें, बच्चे-बच्चियों के साथ, खलिहान में जा बैठीं। धान के पास ही पुआल की पलानी (छप्पर) डाल कर रहने लगीं। वहीं से धान निकाल कर सुखातीं, उसका चावल कूटतीं, पकातीं, और खाती थीं। ओखली, बर्तन, सभी सामान वहीं ले गयीं, और उसे ही घर बना लिया। कुछ दिन यही चलता रहा!

जमीदार घबराया कि क्या करे। पुलिस का दरवाजा खटखटाया। और, वह जमीदार की मदद को आ धमकी।

पूस-माघ के दिन और कड़ाके का हड्डी-तोड़ जाड़ा पड़ता था। गरीबिनों के पास वस्त्र कहां? चिथड़े लपेट कर पुआल और पलानों के भीतर घुस कर किसी प्रकार दिन काटती थीं।

पुलिस ने सबसे पहले उनकी भात पकाने की हंड़िया तोड़नी और फेंकनी शुरू की ताकि भूखों मर कर भाग जायें। बड़ी भीषण परिस्थिति

थी ! धान तो खाया नहीं जा सकता ! और अगर किसी प्रकार चावल बना भी, तो कच्चा कैसे खाया जाय ? सो भी रोज-रोज ? पीछे तो चावल कूटने का सामना भी छीन लिया गया।

मगर औरतें हिम्मत के साथ डटी रहीं। और, बच्चे बच्चियां भी। उफ् ! कैसी नृशंसता पुलिस कर रही थी। उधर, हमारे कार्यकर्त्ता भी सजग थे। खाने की चीजें, बनी बनायी, उन्हें दे आने लगे।

इस पर पुलिस ने सभी को पकड़ने की धमकी दी। बिहारशरीफ वालों को और सिलाव वालों को भी हुक्म सुना दिया गया कि किसी किस्म की सहायता नहीं कर सकते, नहीं तो केस चलाया जायगा ! तब रात में चुपके से खाना पहुंचाया जाने लगा।

इस प्रकार, काम जारी रहा और पुलिस तथा जमीदार का मंसूबा पूरा होता न दीखा। औरतों को गिरफ्तार करने की हिम्मत उनकी होती न थी। चाहते थे कि वे यूं ही हार कर भाग जायें। मगर सो तो हुआ नहीं। अब क्या किया जाय, यह सोचा जाने लगा।

इतने में मघबदरिया शुरू हुई और लगातार हवा के साथ थोड़ी-सी बूंदाबांदी कई दिनों तक पड़ती रही। बस, पुलिस को शैतानियत सूझी। उसने उन औरतों की झोपड़ियां उजाड़ कर फेंक दीं और हजार कोशिश करने पर भी फिर बनने-बनाने नहीं दीं।

अब तो बड़ी आफत थी। एक तो पास में अन्न-वस्त्र नहीं। इस पर वह भयंकर हवा और बदली। जाड़ा तो था ही। मगर वाह रे हिम्मत ! आखिर सीताराम के नेतृत्व ने कमाल किया और उन औरत-बच्चों ने ऐसा किया जो किसान आन्दोलन के इतिहास में अमर रहेगा।

उसने सब कुछ सहा। मगर वहां से हटने का नाम न लिया।

पुरानी पुस्तकों में लिखा है कि मर्दों की अपेक्षा स्त्रियों में दो-गुनी मर्दानगी और छः-गुनी तत्परता रहती है। इसकी सच्चाई हमने प्रत्यक्ष रूप से वहीं देखी। सभी हैरत में थे। पुलिस भी दंग थी। जमीदार और उसके पिट्ठू हक्का-बक्का थे।

अन्त में मजिस्ट्रेट साहब के सामने चल कर तय कराने के बहाने वे औरतें और बच्चे-बच्चियां पुलिस के जरिये बिहारशरीफ लायी गयीं।

मगर वहां भी धोखेबाजी की गयी और, बच्चे-बच्चियों को किसी प्रकार अलग करके, औरतों को गिरफ्तार कर लिया गया। बच्चे-बच्चियां धर्मशाला में लायी गयीं। मगर पुलिस की ताकीद थी कि उन्हें कोई खाना न दे !

लेकिन सभी लोग उसी तरह पत्थर के तो होते नहीं। फलतः लोग उन्हें खिलाते-पिलाते रहे। पुलिस चाहती थी कि ये बच्चे-बच्चियां घर जाने को राजी हो जायें ; इसीलिए खाना-पीना रोकती थी।

मगर उन बच्चों की हिम्मत तो देखो ! उनमें सबसे बड़ी थी एक लड़की, जो आठ-दस वर्ष की होगी। बाकी छोटे थे। वही लड़की सबका नेतृत्व करती थी। उनमें कोई कभी रोने का नाम तो लेता न था। पूछने पर सबों से यही उत्तर मिलता था—हम लोग भी जेल ही जायेंगे।

इसे ही कहते हैं माता-पिता की अमली शिक्षा। उन बच्चों ने न तो स्कूल में और न किसान सभा में ही जेल जाने की बात सीखी थी। जिस प्रकार पक्षी का बच्चा माता-पिता का उड़ना देख कर ही उड़ना और बत्तख का बच्चा तैरना देख कर तैरना सीख जाता है, ठीक वही बात यहां थी। लोग दंग थे। दिन-रात मेला लगा रहता था। अतः, अन्त में बच्चों को भी मां-बाप के पास भेजना ही पड़ा।

जेल में रहने पर भी औरतों की हिम्मत न टूटी और वैसा ही उत्साह बना रहा। वहां से लौटते ही फिर खेत पर आ डटीं।

फिर तो जमींदार साहब निराश होकर वहां से हट ही गये। यहां तक कि कई वर्षों तक लगान वसूल करने की भी उन्हें हिम्मत न रही ! वह वहां आने की हिम्मत कर ही न सके ! इसी बीच मैंने वहां जाकर देखा और सीताराम के नेतृत्व में उन स्त्रियों के दल से बातें भी कीं।

जमींदार की कचहरी ही किसान सभा का आश्रम बन गयी थी। उसी पर लाल झंडा उड़ रहा था !

उस समय गांव का ही एक आदमी जमींदार का अमला था। इस आन्दोलन से दब कर वह भी किसानों के साथ हो गया था।

अब सुना है, कई साल के बाद वह फिर अपनी पुरानी चाल चलने

लगा है; धीरे-धीरे किसानों को फोड़ रहा है। इधर स्वच्छन्द होकर किसानों ने ऊख वगैरा की खेती की। एक-दो ने कुछ पैसे भी बचाये थे। बस, अब उस अमले के साथी बन उन पर सनक सवार है कि सभी जमीन हम लोग ही जमीदार से लिखवा लें और जोतें। ठीक है, "घर फूटे गंवार लूटे।" जमीदार तो यह चाहता ही है।

मगर यह होने न पायेगा। पुराने दिन सदा के लिए चले गये, यह याद रहे!

गया जिले के टेकारी थाने में सांढ़ा मौजा है। उसके जमींदार अमावां-टेकारी के राजा श्री हरिहर प्रसाद नारायण सिंह हैं।

उस गांव में किसान सभा के सबसे जबर्दस्त कार्यकर्ता ब्रह्मचारी रंगनाथ जी हैं। वह गठीले जवान, बिलकुल नयी उम्र के, निडर आदमी हैं। लाठी-वाठी से जरा भी नहीं डरते। हिम्मत काफी रखते हैं। अब तक कई बार जेल जा चुके हैं—सो भी किसानों की ही लड़ाई में। कांग्रेस से उनका कोई ताल्लुक नहीं रहा है। जहां किसानों का संघर्ष छिड़ा, वहीं जा डटे। सौभाग्य से उनकी बहन भी उन जैसी ही हिम्मत वाली हैं।

सांढ़ा गांव तो बड़ा है। मगर उजड़ा-जैसा ही प्रतीत होता है। जमींदारी ऐसी जोंक और ऐसी पिशाची है कि किसानों का रक्त बूंद-बूंद करके चूस लेती है और उन्हें मरणासन्न छोड़ देती है। जमींदारों के अमले प्लेग के कीटाणुओं की तरह जहां पहुंचे कि उसे उजाड़ छोड़ा। इनके नाम पर किसानों का कलेजा कांपता है।

सांढ़ा में हजारों बीघा जमीन नीलाम होकर किसानों के हाथ से निकल चुकी थी। मगर जमींदार आखिर क्या करता? जमीन तो पन्हाई गाय नहीं कि चट दुह ले। वह रुपया-पैसा या चावल-गेहूं भी नहीं कि नीलाम करके कहीं उठा ले जाय। वह तो नीलाम होने के बाद भी जहां की तहां पड़ी रहती है। वह किसान को छोड़ना नहीं चाहती—छोड़ती नहीं। असल में उसी की जो ठहरी! फिर कहां जाय और कैसे?

इसीलिए तो अब किसान सभा के प्रताप से किसानों ने यह बात समझ ली है। उन्होंने जमींदारों से कहना भी शुरू कर दिया है कि जब तक जमीन को आप उठा नहीं ले जाते, जब तक वह जहां की तहां पड़ी

रहती है, तब तक हम उसे जोतना-बोना न छोड़ेंगे चाहे कागजी नीलामी और दखल-दिहानी हजार हो जाय। आखिर जमीन रहते भी भूखों क्यों मरें? जाड़े में क्यों ठिठुरें और दवा के बिना मौत के मुख में क्यों चले जायें?

कुछ लोग कहने लगे हैं कि किसान ज्यादती करते हैं। वे कानून नहीं मानते। मगर ज्यादती जो जमीदार और हाकिम करते हैं। वे चाहते तो हैं कि खेत नीलाम करवा कर उसके मालिक बन जायें, मगर भूख, बीमारी, जाड़ा, शर्म, आदि, किसानों के पास ही छोड़ देते हैं! यह कैसे होगा?

आखिर इन भूख, बीमारी, आदि, के लिए कोई कानून है? क्या ये किसी कानून को मानते हैं? यदि नहीं, तो किसान बेचारा क्या करे? उसे तो यही भूख, रोग, आदि, मजबूर करते हैं कि या तो वह खेत जोते या चोरी-डकैती करे। मगर चोरी-डकैती की तो हिम्मत उसे तब तक होती नहीं जब तक जमीन पड़ी है। हां, वह चली जाय तो चोरी-डकैती भी करनी ही पड़ेगी। लाचारी जो ठहरी।

यह भी तो ताज्जुब ही है न, कि चोर-बदमाशों को पक्के मकानों में रख कर सरकार खुद खाना, कपड़ा, और दवा देती है? मगर गेहूं, बासमती, दूध, घी, पैदा करके गैरों को लुटाने वाले किसान भूखों मरते हैं और सरकार को जरा भी फिक्र नहीं! क्या इसका यह तात्पर्य नहीं कि सरकार अप्रत्यक्ष रूप से किसानों तथा गरीबों से इशारा करती है कि यदि जीविका का उपाय न हो, तो चोरी-डकैती करो?

सरकार और जमीदार यह क्यों नहीं करते कि जमीन के साथ ही किसान परिवार की भूख, बीमारी, शर्म, जाड़ा, आदि, भी नीलाम करवा दें? तब कोई दिक्कत न होगी। फलतः बकाश्त जमीन का झमेला खड़ा ही न होगा।

इसलिए सांढ़ा की जमीन भी उन्हीं किसानों के पास पड़ी थी। उसे वे ही जोतते थे। मगर तरह-तरह से तंग किये जाते थे। कभी पैदावार में से सिर्फ चौथाई उन्हें देकर तीन भाग जमीदार ले लेता, लेकिन उस चौथाई से तो खेती का खर्च भी सधना असंभव था! कभी प्रति बीघा

दो-चार रुपये पहले ही लेकर उन्हें खेत दिया जाता, बाद में पैदावार में से भी आधा या दो-तिहाई लिया जाता! कभी पूरे खेत का लगान इतना ज्यादा बांध दिया जाता कि उसे चुकाना किसान के लिए असंभव हो जाता। सरकार मौजूद! उसकी सर्वशक्तिशालिनी पुलिस मौजूद! अमन और कानून के ठेकेदार भी मौजूद! मगर कोई देखने वाला नहीं कि यह लूट और अन्धेरखाता क्यों हो रहा है! जमीदार किस तमीज और किस अक्ल से ऐसा कर रहा है!

जमीदार के दिमाग का भी दिवाला ही निकला समझिये। नहीं तो वह खामखाह सोचता कि जब थोड़ा-सा लगान रहने पर किसान चुकता न कर सके और अन्त में जमीन नीलाम हो गयी—यह भी नहीं कि रुपये छिपा कर उन्होंने महल बनवाये, तवायफें नचवायीं या रासरंग किये—तो फिर यह कमर-तोड़ खूनी लगान वे कैसे चुका सकेंगे और जिन्दा भी कैसे रहेंगे? यों तो जमीदार, उसके हिमायती, साथी और वकील तथा सरकार का दावा है कि वे सभी बड़े ही दिमागदार हैं। मगर दिमाग के दिवाले का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है?

और तो और। सुनते हैं कोई सर्वशक्तिमान भगवान है। वह दीनबन्धु और दयालु भी है। तो क्या वह भी सोया है? या कि मर गया? या जमीदारों का घूस उसने भी खा लिया? नहीं तो ऐसा होने क्यों देता? क्या जमीदारों और पुलिस से वह भी डरता है? तो क्या ये किसान दीन-दुखिया और दया के पात्र नहीं हैं? क्या भगवान चाहता है कि ये लोग भी उसे हलुवा का भोग लगायें तब ही इनकी सुनेगा? मगर इन्हें हलुवा कहां मिलेगा? यहां तो सत्तू भी मुयस्सर नहीं!

जमीदार और सरकार दोनों ही पानी पी-पीकर कोसा करते हैं केवल किसान सभा वालों को! वे कहते हैं कि किसानों में क्रान्ति का भाव ये लोग ही भर रहे हैं, शान्ति एवं कानून भंग करने का पाठ उन्हें ये ही पढ़ाते हैं, मगर जमीदारों और उनके नौकरों की—उनके मैनेजरों, सर्किल अफसरों, तहसीलदारों, बराहिलों की—ऊपर लिखी जल्लादाना हरकतें ही असल में क्रान्ति और कानून तोड़ने की प्रवृत्ति के लिए क्षेत्र तैयार करती हैं! मरता क्या न करता? "अतिशय रगड़

करै जो कोई, अनल प्रकट चन्दन ते होई।" सूखी घास और आग एक जगह रख देना और फिर उम्मीद करना कि आग न जले, सबसे बड़ी नादानी है।

क्रांति की आग भूखे पेट और नंगे तन से पैदा होती है। पेट की ज्वाला पेट और शरीर को जलाने के बाद संसार को जला कर ही दम लेती है। दुनिया का इतिहास यही बताता है। आप पूर्वोक्त हृदयहीनता और शैतानियतें बन्द कीजिये और देखिये कि फिर भी क्रांति की बात कितने किसान करते हैं। भूख संसार में सबसे बड़ी है, यहां तक कि भगवान से भी। भगवान से मिलने और बैकुंठ जाने के लिए कोई चोरी नहीं करता। मगर भूख के लिए सभी करते हैं। गुरु जी महाराज चिल्लाते रहें कि—बच्चा, चोरी करो तो भगवान मिलेंगे। फिर भी चेले एक न सुनेंगे। मगर चोरी का उपदेश किसी भी भुक्खड़ को नहीं देना पड़ता !

लेकिन किसान सभा का जमाना आया देख, जमीदार ने उस तरह भी जमीन देने से इन्कार कर दिया। एक बार ले लेने के बाद किसान दावेदार हो जायेंगे और छोड़ेंगे नहीं—यह भय उसे भूत की तरह सताने लगा। जमीन से स्वयं कुछ पैदा कर सकता नहीं और किसान को देने में यह दिक्कत ! अजीब पहेली थी। पाही किसान को दी जाय तो ठीक। मगर जो किसान सभा देही किसानों को सजग और संगठित कर सकती है, वह क्या उन्हें नहीं कर सकती ? तब ? फिर इस झमेले से क्या फायदा ?

मगर जमीदार यह सोचे तब न ! उसकी तो बुद्धि ही मारी जा चुकी है। वह आंखों से देखता है कि धड़ाधड़ किसान संगठित हो रहे हैं। फिर भी वह वही मुंशी जी वाला हिसाब लगाये जा रहा है—हालांकि मुंशी जी की ही तरह बहुत जल्द उसे कहना पड़ेगा कि "नापे-जोखे थाहे, लड़के डूबे काहे ?" मगर ऐसा कौन पाही किसान था जो बला में पड़े ? "जहां सांप का बिल, तहां पूत का सिरहाना ?" हजारों किसानों के बीच बाहर का आदमी जाकर किसी प्रकार खेती कर पायेगा ? किसान लोग मुट्ठी-मुट्ठी करके नोच न लेंगे ? यह बड़ा

सवाल था। इसलिए सोचा गया, पहले जमींदार की ओर से उसमें खेती की जाय और कुछ दिनों के बाद सांढ़ा वाले जब ठंडे पड़ जायें तो बाहरियों को वह जमीन दी जाय।

आसाढ़ का महीना था। जमींदार के दलालों और अमलों ने सोचा कि खेत जोता जाय। मगर उसके पास इतने हल-बैल कहां? और, पास वाले किसान तो हल देंगे नहीं! किसान सभा का जमाना ही तो ठहरा! पहले की बात होती तो हरी, बेगारी, आदि, से काम चल जाता। इसलिए बहुत दूर से बैलगाड़ियों पर लाद कर हल लाये गये। बैल भी आये। पुलिस को पहले ही खबर दे दी गयी थी। गांव वाले अस्सी प्रमुख लोगों पर दफा १४४ की नोटिस भी तामील कर दी गयी थी कि खेत के नजदीक न जायें!

इधर हमारे किसानकर्मी पं० यदुनन्दन शर्मा भी तैयार थे। सांढ़ा जाकर गांव के स्त्री-पुरुष सभी किसानों से बातें करके उन्हें ठीक कर आये थे। औरतें तैयार थीं और कहती थीं कि मर्द खेतों पर न जायें। आखिर सीधी लड़ाई तो थी ही। सत्याग्रह के नाम पर यश और वाहवाही थोड़े ही लूटनी थी। सोचा गया—किसान जेल क्यों जायें; वे बाहर ही रहें और घर-गृहस्थी संभालें।

उधर शर्मा जी को ही गिरफ्तार करने के लिए भी पुलिस तुली बैठी थी। मगर वह तो चुपके से रात में बीसियों मील साइकिल पर चल कर वहां जाते और काम करके भाग आते। पुलिस भी हैरान थी। कोई ऐसा वारंट तो था नहीं कि जहां पाये वहीं पकड़ ले। सांढ़ा में ही रोक थी और वहां उन्हें वह न देख पाती थी।

खैर, उधर मर्दों की बुलाहट तो मजिस्टर साहब ने उस नोटिस के सम्बन्ध में कचहरी में की, और इधर बैलों के झुंड के साथ बैलगाड़ियों पर लदे-लदाये हल वगैरा लेकर जमींदार की यम-सेना ठीक उसी समय सांढ़ा पहुंच गयी! पहले ही से सब ठीक-ठाक था।

पुलिस के कई दरोगा, इंस्पेक्टर, कांस्टेबुलों का दल और सैकड़ों चौकीदार, दफादार भी साथ ही जा धमके। आखिर जमींदार की खेती करवानी जो थी। भलेमानसों को यह भी तमीज नहीं कि इतनी तैयारी

से खेती नहीं की जा सकती। इसमें तो "नौ की लकड़ी, नब्बे खर्च" की बात थी। और रोज-रोज यह यम-सेना और ये बानर-भालु मिलेंगे भी तो नहीं। तब क्या होगा? और ये जायेंगे भी कहां-कहां? पुराना जमाना भी नहीं कि किसान दब जायेंगे, डर जायेंगे। यह तो यदुनन्दन की गया में उनका और उनकी—हमारी—सभा का जमाना है।

अन्त में हुआ भी ऐसा ही और "नदिया नीचे गयी, मगर दादा को डुबा कर।" जमीदार का और पुलिस का भी गर्व चूर होना था! और कुछ बात न थी।

हां, तो पुलिस की सेना ने खेत को चारों ओर से घेर लिया और बीच में जमीदार के भाड़े वाले हल चलने लगे। वे लोग समझते थे कि मर्द लोग नोटिस के डर से कोई बाधा न डालेंगे। वे यहां हैं भी नहीं। जो हैं भी, वे पुलिस की तैयारी देख कर हिम्मत न करेंगे। चारों ओर सिर्फ हजारों तमाशबीन खड़े थे। नयी चीज और पहले-पहल लड़ाई इसी प्रकार की थी। इसलिए कौतूहल भी था।

इतने में ही गांव से औरतों का एक झुंड—याद रहे बूढ़ी, जवान, सभी प्रकार की ब्राह्मण औरतें थीं—आता दीखा और, यह आया, वह आया, अब पहुंचा, तब पहुंचा करते-करते धड़ाम से उसी खेत पर आ ही तो गया! औरतों ने न कुछ सोचा, न विचारा। वे सीधे पुलिस के घेरे को फाड़ कर हलों के पास चली गयीं और उनके सामने लेट गयीं।

फिर, हल चलें तो कैसे? हल बन्द थे। और उसी के साथ पुलिस और जमीदार के आदमियों की बोलती भी बन्द थी। सभी हक्के-बक्के थे। कुछ सूझता न था। उन्होंने स्वप्न में भी न सोचा था कि ऐसा होगा और साड़ी एवं चूड़ी वालियों के सामने धोती तथा मूंछ वालों को झुकना होगा।

फिर थोड़ी देर बाद राय-सलाह करके पुलिस ने उपाय सोचा और दूसरे खेत को जाकर मजबूती से घेर लिया। सभी पुलिस वाले एक-दूसरे की लंबी बांह पकड़े हुए खेत के चारों ओर छेंक कर खड़े हो गये ताकि औरतें उसके भीतर न जा सकें। मगर हल तो वहां था नहीं और औरतें उसे जाने देती न थीं। इसलिए एक-दो पुलिस अफसरों ने

कुछ औरतों से मीठी-मीठी बातें शुरू कर दीं। इस प्रकार उन्हें फंसा लिया। कहने लगे—तुम लोग रईस घरों की बहू-बेटियां हो, यह काम ठीक नहीं, जेल जाना पड़ेगा, आदि-आदि। इसी बीच सभी हल पुलिस के घेरे में जाकर चलने लगे। तब एक औरत ने पुकार कर बाकियों से कहा—यहां हमें बातों के धोखे में डाल कर, देखो, वह खेत जोता जा रहा है ! चलो-चलो, नहीं तो सब खत्म हुआ !

बस, फिर क्या था ? सब की सब दौड़ पड़ीं और चंडी की तरह पुलिस की बाहों को मरोड़ कर अलग हटाती हुई हल के सामने जा जमीं। फिर तो न सिर्फ हल चलना ही बंद हुआ, बल्कि हलवाहे और जमीदार के आदमी भी सब कुछ छोड़छाड़ कर भाग गये—हालांकि उन्हें पुलिस ललकारती ही रही।

इस पर पुलिस काफी बेवकूफ बनी। रंज होकर पुलिस वालों ने जमीदार के कारपरदाजों से यहां तक कह दिया कि जब तुम्हीं लोग भागते हो और कुछ करने को तैयार नहीं, तो हम नाहक क्यों मरें ? बाद में वे अपना-सा मुंह लेकर चलने की तैयारी करने लगे।

मगर यह काम भी आसान न था। जिस बस (लौरी) में लद कर वे लोग सदलबल आये थे, जब लौटने के लिए उसमें बैठने लगे तो औरतें उस पर जा चढ़ीं और कहने लगीं—हमने कानून तोड़ा है इसलिए हमें जेल ले चलिए ! यों ही क्यों लौटे जाते हैं ?

अब तो आफत थी ! जो औरतें भीतर न जा सकीं, वे बस के बाहर ही उस पर लटक गयीं। पुलिस वाले हैरान थे। कहां तो आतंक फैलाने और जमीदार का खेत जुतवाने आये थे और गिरफ्तारी की धमकी देते थे, और कहां अब दुम दबा कर यदि भागते हैं तो यह भी असम्भव ! औरतें खुद जेल जाना चाहती हैं ! मगर वे ले जाने को रवादार नहीं ! मगर वे तो तुली बैठी हैं, और बिना ले गये गुजर नहीं ! लौरी चल जो नहीं सकती !

कोई रास्ता सूझता न था। आखिर बड़ी दिक्कत से गांव वालों ने समझा-बुझाकर रोका। तब कहीं "रोजा को आये, नमाज गले पड़ी" से जान बची और रवाना हो सके।

यह सारी दास्तान जब मेरे पास पहुंची, तो मेरा कलेजा बांसों उछल पड़ा। मैंने माना कि बिना मातृशक्ति के पड़े हमारी और किसानों की जीत नहीं हो सकती।

याद रहे कि कांग्रेसी लड़ाई में जिस प्रकार पढ़ी-लिखी औरतें उपदेश और गर्म लेक्चर सुन कर थोड़ी-बहुत कूदी थीं, सो बात यहां न थी। यहां तो अपनी रोटी का सवाल उन्हें खुद-ब-खुद हल करने की सूझी। उन्होंने यह भी स्पष्ट देखा कि मर्दों से यह काम होने का नहीं, इसी से इसमें कूदीं। इसीलिए ऐसी मुस्तैदी थी—क्योंकि जीवन-मरण का प्रश्न था!

इसके बाद तो मजिस्ट्रेट, पुलिस और जमीदार की आंखों की पट्टी खुली। उन्होंने समझा कि यह मसला ऐसा आसान नहीं, जैसा कि पहले समझते थे। यह तो बहुत ही पेचीदा है।

इसलिए सुलह-सपाटे की बात शुरू हुई। मजिस्टर साहब ने किसानों से कहा कि यदि आप लोग तैयार हो जायें तो समझौता करवा दिया जाय। किसान तो तैयार थे ही। मगर शर्मा जी से भी उन्होंने पूछ लिया और उनके 'हां' कहने पर वे लोग सुलह के लिए तैयारी की बात कह आये।

अब बात चली कि किस आधार पर सुलह-सलाहियत हो। सोच-साच कर यह बात निकाली गयी कि फी किसान केवल एक बीघा जमीन दी जाय। किसानों ने इसे भी मान लिया, हालांकि एक बीघे से एक आदमी की साल भर गुजर असंभव थी। फलतः, उन्होंने यही कहा कि जमीन जरा अच्छी रहे तो शायद किसी प्रकार काम चले। लेकिन सुलह तो ठीक-ठीक तभी होती है जब दोनों दल उसकी उपयोगिता के कायल हों। और यहां हालत यह थी कि अभी तक जमीदार इसका कायल न था। कुछ मजबूरी और कुछ मजिस्टर के दबाव से ही उस पर राजी हुआ था। मजिस्टर बेचारे भी अपनी हैरानी और सारा तूफान बचाने के लिए ही परेशान थे। इसलिए दूसरी तरफ बेमन की और "आय फंसे" वाली बात थी। हमने यह सब जानते हुए भी किसानों को तैयार होने को कहा। इसका नतीजा भी अच्छा ही हुआ।

खैर, जमीन मिली सो तो मिली ही। हमें इस से अनुभव बहुत कुछ हुआ। इसके करते प्रारम्भिक दशा में घोर दमन की आग में जलने से बचा कर किसानों में हमने हिम्मत भी ला दी।

अब इस बात की जांच शुरू हुई कि गांव में कितने आदमी बिना जमीन और जीविका के हैं। मगर यह काम भी जमीदार के उन्हीं अमलों को सौंपा गया जो न सिर्फ हृदयहीन और बेदर्द थे, बल्कि जिन्हें केवल किसानों को पीसने की आदत थी।

उन लोगों ने फिर वही मुंशी जी वाला हिसाब लगा कर रिपोर्ट तैयार की कि केवल पचास आदमी ही बिना जीविका के हैं, हालांकि थे असल में उससे कई गुने। उसी के बल पर हाकिम ने भी सिर्फ पचास बीघे जमीन देने का निर्णय किया।

किसान घबराये। मगर शर्मा जी की और मेरी राय से मान गये। सिर्फ यही चाहा कि खैर, पचास बीघे अच्छी जमीन तो मिले। मगर वह भी नहीं होने को था। जमीदार ने सबसे खराब जमीन चुनी और उसे ही देने को कहा। दूसरी जमीनों के बारे में न जाने क्या-क्या दिक्कतें बता डालीं और मजिस्टर ने मान लिया। खैर, पचास बीघे भी एक जगह हो तो खूब परिश्रम करके खेती हो। इसलिए अन्ततः उसे भी किसानों ने मान लिया।

मगर जब हजार टुकड़ों में पचास बीघे पूरे करने की बन्दिश की गयी तब मामला बेढंगा हुआ। और, औरतें बिगड़ उठीं। उन्होंने साफ कह दिया—मर्द हट जायें, हम सभी जमीन लेकर ही दम लेंगी ?

अब तो गजब हुआ। मजिस्टर को भी मालूम हो गया। मर्द तैयार भी थे, तो औरतें सुनने को रवादार नहीं ! मेरे पास खबर पहुंची। मैंने कहा कि काम बिगड़ा। मैंने जाकर उन्हें समझाना चाहा। मैं ताड़ गया कि जमीदार किसी प्रकार चालबाजी करके किसानों के माथे सुलह से भाग जाने का दोष थोप-थाप कर मजिस्ट्रेट को भड़काना और अपना काम बनाना चाहता है।

मगर पुलिस इतनी चौकन्नी थी कि मेरा जाना असंभव था। मेरे खिलाफ १४४ की नोटिस तो थी ही और मैं उसे तोड़ने को तैयार न

था, फलतः शर्मा जी को खबर भेजी और उन्होंने चुपके से कुछ लोगों को सांढ़ा से बहुत दूर मखदूमपुर बुलाया। मैं भी रात में चुपके से वहां जाकर एक सुनसान मैदान में उन्हें समझा आया कि वे हर्गिज इन्कार न करें; औरतों को भी समझा दें कि ऐसा करने में खतरा है।

मजिस्ट्रेट तो समझते थे कि किसान अब न मानेंगे। मगर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब किसानों ने जाकर उनके सामने स्वीकार कर लिया कि इतने पर भी वे तैयार हैं। बस, इतना होना था कि पासा पलटा। अब तो मजिस्ट्रेट के दिल पर पूरा असर हो गया कि किसान और उनके नेता जरूर झगड़ा बचाना चाहते हैं, जमीदार ही झगड़ा लगाना और बढ़ाना चाहता है; किसानों और किसान लीडरों पर झगड़े का इल्जाम गलत है। इसके बाद उसने निश्चय कर लिया कि सबसे अच्छी जमीन ही दिलवायी जाय। सो भी एक ही जगह। हुआ भी यही।

इतना ही नहीं। उसके करते, सांढ़ा के सम्बन्ध में मजिस्ट्रेटों का कुछ ऐसा रुख हो गया कि जो ही आया किसानों का खयाल बराबर करता रहा।

फलतः, उसके बाद जब पचास बीघे के अलावा १६ बीघे ऊख पर किसानों का दावा हुआ और जमीदार ने समझौते के बल पर ही उन्हें बेदखल करना चाहा, तो पुलिस और मजिस्ट्रेट के अच्छे रुख के फल-स्वरूप किसान जीत गये क्योंकि ऊख पर किसानों का ही अधिकार मजिस्ट्रेट ने बता दिया। फिर तो धीरे-धीरे और जमीनों पर भी किसानों का दावा हो गया और वे जमीनें भी उनके कब्जे में ही रह गयीं।

आज तो सांढ़ा की सब जमीन फिर किसान ही जोतते-बोते हैं। जमीदार के बराहिल ने जो पचास बीघे अपने नाम से पहले से ही लिखवा ली थी, उसे भी छोड़ कर वह भाग गया और किसानों ने उस पर दखल कर लिया।

सुलह के बारे में मेरा एक सिद्धांत रहा है और उससे किसानों को अन्त में फायदा ही हुआ है। सुलह तो हम करते हैं अपनी कमजोरी के करते दावपेंच से ही। और जब एक बार हमने उसके लिए वचन दे दिया, तो फिर अन्त तक भागना नहीं चाहिए। उसमें डटना चाहिए।

बात कहें तो खूब नीचे-ऊपर सोच कर और एक बार जब कह दी तो चाहे जान जाय, मगर उस पर अन्त तक डटे रहें। इसका प्रभाव दूसरों पर और अंततोगत्वा सरकारी हाकिमों पर भी पडता है, जैसा कि सांढ़ा में ही देखा गया है। फलस्वरूप हमारा पक्ष हर प्रकार से दृढ़ हो जाता है। इससे हममें कमजोरी तो कभी आयी नहीं है। यह दूसरी बात है कि हमारी दिक्कतें बढ़ी हैं। मगर जब हम काफी बलवान न थे, तभी तो सुलह की बात मानी। फिर तो दिक्कतें जरूरी थीं।

हां, अब हम बलवान हो गये और सुलह में आम तौर से न पड़ेंगे, यह बात दूसरी है। मगर जिस दशा में हमने सुलह की बात मानी थी, उसमें वही ठीक था।

मैं जब सन् १६३६ ई. में सांढ़ा में गया, तो यह जान कर बड़ी खुशी हुई कि किसान खूब मुस्तैद हैं। वे खुश भी हैं। प्रायः ग्यारह सौ बीघे जमीन में राजा अमावां-टेकारी की बंटाई से करीब एक हजार मन धान उस साल मिला था, मुझे ऐसा बताया गया। यदि किसानों से लड़ते नहीं तो इससे कहीं ज्यादा उन्हें बिना तरद्दुद मिला करता! मगर जमींदारी की ऐंठ भी तो ठहरी। चलो, अच्छा ही हुआ।

: ५ :

अनुवां नाम से प्रसिद्ध एक बस्ती गया जिले के अरबल थाने में है। उस गांव की जमीदारी कुछ ही दिन पहले पुराण नामक गांव के एक सज्जन ने खरीदी है। ये हजरत नये जमीदार बने हैं। पहले इनकी हालत अच्छी न थी! मगर जैसे-तैसे रुपया जमा करके अब चलते-पुर्जे जमीदार बन गये। कहते हैं कि नया मुसलमान बहुत ज्यादा नमाज पढ़ता है। वही हालत इनकी है। जमीदारी का नया रंग इन पर चढ़ा है, इसलिए दिन-रात इसी नशे में चूर रहते और किसानों को चैन नहीं लेने देते।

अनुवां के किसानों की बात तो कहिये मत। वे लोग जाति के कोइरी हैं। मैंने अनुभव किया है, यह जाति गौ है। इतनी सीधी और दबने वाली कि कुछ पूछिये मत। मगर कसाई तो आखिर गाय को भी नहीं छोड़ता, वह तो उसका भी वध करता ही है।

ठीक ऐसा ही हुआ अनुवां वालों के साथ। वे क्या जानें रसीद किस चिड़िया का नाम है। वे लोग जैसे सीधे, वैसे ही परिश्रमी भी होते हैं। खून को पानी करके गयी-गुजरी जमीन में भी साग-तरकारी वगैरा पैदा करते एवं जमीदार की सख्त से सख्त मांग और कड़े से कड़ा पावना भी चुका ही देते हैं, हालांकि इसके करते स्त्री और बच्चों तक को कलेजा फाड़ कर कमाना पड़ता है। लेकिन सब कुछ करने पर भी अनुवां वालों की जमीन नीलाम होकर जमीदार की बकाश्त बन चुकी थी। जहां तक याद है, पहले ही जमीदार ने इसे बकाश्त बना लिया था। फिर भी वे ही किसान उसे जोतते थे।

जब पुराण वाले महाशय का जमाना आया, तो इन्होंने चाहा कि किसानों से सभी जमीन छीन लें क्योंकि इनके सिर तो किसान सभा और बकाश्त-संघर्ष के भय का भूत सवार था जो चैन से न रहने देता

था। इसलिए धीरे-धीरे इन्होंने अपना विकराल रूप दिखाना शुरू किया। चाहा कि कल, बल, छल से उन गरीबों को बेदखल कर दें। एकाएक जोर-जुल्म करने में खतरा था कि कहीं तूफान खड़ा न हो जाय। बेचारे कोइरी गिड़गिड़ाये, हाथ-पांव पड़े। मगर कौन सुनता है ?

यदि बाघ भक्त हो तो खाये क्या ? वह तो फलाहारी बन नहीं सकता ! फिर तो मर ही जायगा। ठीक यही बात जमींदारों की है। वे यदि ईमानदार बनें और जोर-जुल्म न करें तो धीरे-धीरे जमींदारी ही खत्म हो जाय।

यही तो उसकी भीतरी कमजोरी (inherent weekness) है कि बिना जुल्म के टिक नहीं सकती। अगर किसानों पर आतंक न जमाया जाय और तरह-तरह से वे दबा न रखे जायें तो एक दिन उभड़ जायें और लगान देना बन्द कर दें। नालिश करके वसूली में चाहे किसान भी भले ही तबाह हों, मगर जमींदार के लिए भी तो "नौ की लकड़ी और नब्बे खर्च" की बात होती ही है। कचहरियों के नाजायज खर्च पूछिये नहीं। फलतः उसकी जमींदारी ही बिक जाय। इससे बचने के लिए जोर-जुल्म, गैर-कानूनी दबाव, और चार-चार पांच-पांच रुपये के नौकर रख कर उनके द्वारा किसानों की छाती पर कोदों दलते रहना जरूरी है। इसीलिए यह जमींदारी खत्म होने वाली चीज है। दुनिया से खत्म होकर अब केवल भारत में ही टिकी है। इंगलैंड में भी है सही, मगर वहां तो उसका रूप ही दूसरा है।

किसान निराश्रय थे और सैकड़ों स्त्री, पुरुष, बच्चों के भूखों मरने की नौबत आयी। क्या करें, कहां जायें, किसे पुकारें ? भगवान भी वहरा हो गया मालूम पड़ता है !

ऐसा सोचते-सोचते उन लोगों ने सोचा कि चलें किसानों के नेता और किसान सभा के संचालक पं० यदुनन्दन शर्मा के पास; सुना है, वह सिर्फ गरीब-दुखियों के लिए ही मरते रहते हैं; उनका दूसरा काम है ही नहीं।

बस, वे लोग चल पड़े और शर्मा जी से मिल कर सबने अपनी राम कहानी सुनायी। शर्मा जी ने पूछा कि तुम्हारे मकान संगमर्मर या

ईंट-पत्थर के बने तो नहीं हैं ? खपरैल से छाये गये भी शायद ही हों ! उत्तर मिला—फूंस की झोंपड़ियां ही तो हैं।

तब उन्होंने कहा कि क्यों नहीं उन्हीं झोंपड़ों को उठा कर अपने-अपने खेतों पर लगा लेते और वहीं पशु, मवेशी, बकरी, बर्तन वगैरा भी रख लेते ? गांव में नाहक पड़े रहने से न तो स्वर्ग ही मिलेगा और न खाना-पीना ही—जमीन तो मिलेगी कहां, उल्टे छिन ही जाने को है। मगर खेतों पर झोंपड़े डाल कर रहने का सबसे बड़ा नतीजा यह होगा कि अन्धों तक को मानना पड़ जायगा कि खेतों पर कब्जा तुम्हारा ही है। यों तो दुनिया में अधिकार वाले और बड़े कहे जाने वाले आम तौर से आंख के अन्धे और कान के ही पक्के होते हैं, लेकिन पुलिस और हाकिम-हुक्काम तो खास करके ऐसे ही होते हैं। वे तो सुनी-सुनायी बातों पर दूर से ही विश्वास कर लेते हैं। किसान की तो उन तक पहुंच भी नहीं। इसलिए वे धनियों की ही सुनते हैं। मगर जब तुम्हारी झोंपड़ियां खेतों पर ही होंगी, तो आखिर पुलिस को जाकर देखना तो पड़ेगा ही। अगर फिर भी गलत रिपोर्ट दे, तो उसे ललकारा तो जा ही सकता है। इस प्रकार खेतों पर कब्जा साबित होने से कानूनन उनसे किसान हटाये नहीं जा सकते। बकाश्त जमीन की हालत ही ऐसी है।

किसानों के मन में यह बात बैठ गयी और उन्होंने खेतों पर ही जा बसने का संकल्प खुशी-खुशी कर लिया।

उन्हें इससे आसानी भी होगी, ऐसा सोचा गया। सब बाल-बच्चे वहीं रहेंगे, तो फसल की रखवाली भी अच्छी होगी। दौड़-दौड़ कर गांव में जाने तथा व्यर्थ हैरान होने की नौबत भी न आयेगी। शर्मा जी के उपदेश का उन पर पूरा प्रभाव पड़ा।

लेकिन यदि वे 'अशराफ' कहे जाने वाले लोग—ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि—होते, तो बहुत ननुनच करते और खेतों पर जाकर शायद ही बस सकते। उनकी शान में फर्क जो पड़ जाता ! उनकी इज्जत जो बिगड़ जाती ! इसे ही कहते हैं कि "रस्सी तो जल गयी, मगर ऐंठन बाकी ही है !" भूखों मरने की नौबत है ! नंगे फिरें यह हालत है। फिर भी ऐंठ

ज्यों की त्यों ! लेकिन जमाना बदल गया। किसानी भी करें और झूठी शान भी रखें, यह बात अब चलने की नहीं।

शर्मा जी ने उन लोगों को यह भी समझा दिया कि इतने पर भी पैसे के बल से जमीदार दिक करना चाहेगा और तुम लोगों को जेल में ले जाने की कोशिश करेगा। समन, नोटिस और वारंट भी आ सकता है। मगर खबरदार, अपने खेत से हर्गिज न हटना। भुलावे में न पड़ना और कचहरी जाने की गलती न करना। पुलिस और हाकिमों से साफ कह देना—इन्हीं खेतों को जेल बना दीजिए ! हम यहीं पड़े रहेंगे ! भागेंगे नहीं। मगर दूसरी जेल में हम नहीं जा सकते। यह भी कह देना कि जब तक कि हमारे स्त्री, बच्चे, बूढ़े, बकरी, मवेशी वगैरा सभी उस दूसरी जेल नहीं पहुंचाये जाते, तब तक इन्हें यहीं छोड़ कर सिर्फ कुछ लोग उस जेल कदापि न जायेंगे। हां, यदि सबको ले चलने का इन्तजाम करें, तो देखा जायगा।

मगर जेल से लौटने के बाद फिर हमारे लिए जीविका का प्रबन्ध क्या होगा, यह अभी से पक्का-पक्का तय हो जाना चाहिए नहीं तो पीछे धोखा होगा और हम लोग लावारिस पशु की तरह छोड़ दिये जायेंगे। उस समय हम क्या करेंगे ? पशु तो दूसरे के खेत में चर कर पेट भर लेगा। उस पर न तो दफा ३७९ का केस चलेगा और न १०७, १०८, १४४ की नोटिस ही होगी। मगर हमारे लिए तो आफत है। जब सदा से जोते जाने वाले अपने खेत पर ही हल चलाने से जेल की नौबत है, तब गैरों के खेत के पास जाने पर तो शायद फांसी ही होगी। अतः हमसे तो पशु ही अच्छे !

लेकिन यदि पुलिस वाले जोर-जुल्म करें और खामखाह पकड़ ले जाना चाहें, तो सभी बाल-बच्चों को एक-दूसरे को अच्छी तरह पकड़ कर पड़ जाना होगा और कहना होगा कि हम यों भेड़-बकरी की तरह चले न जायेंगे, सारी शक्ति लगा कर यहीं रुकेंगे। सौ आदमियों को ले जाने के लिए हजारों आदमी और सैकड़ों लौरियां चाहिए; सो भी यहां से देखें हमें कौन कैसे उठा ले जाता है ! हमने तो तय कर लिया है कि न जायेंगे ! जाइए, जो मन में आये कीजिए !

शर्मा जी ने कहा—अगर तुम लोगों ने मेरी ये बातें मान लीं और ऐसा ही निश्चय कर लिया, तो फिर तुम्हारे खेतों पर से तुम्हें कोई हटाने वाली ताकत इस दुनिया में नहीं है। जमीदार, सरकार, पुलिस, गुण्डे वगैरा सभी थक कर बैठ जायेंगे, यह ध्रुव सत्य है।

किसान लोग अनुवां लौट गये और शर्मा जी के उपदेश का उन्होंने अक्षरशः पालन किया। रातों-रात घर-द्वार उजाड़ कर खेतों पर ही जा बसे। खेती-बारी का काम भी लगातार चलने लगा।

अचानक रात भर में ही खेतों पर उन्हें आबाद देख सभी को आश्चर्य हुआ। इसका रहस्य कोई समझ न सका—गो जमीदार को घबराहट हुई। मगर करता ही आखिर क्या? फलतः, किसानों का काम चालू रहा।

उधर अन्धे कानून की अन्धी कार्यवाही भी जारी हुई और किसानों पर १४४ की नोटिस आ ही तो गयी। मगर बेकार! खेतों पर ही तो उनका घर था। फिर वे जाते कहां? न जाने किस अक्ल से ऐसी नोटिस जारी की गयी! ऐसा करने वालों को पहले देख तो लेना था कि किसानों के घर कहां हैं!

फिर उन पर हुक्म उदूली का केस भी दफा १८८ के अनुसार चलाया गया। मगर किसानों को उससे क्या मतलब? उनकी तो खेती चलती रही। कभी पुलिस का दल घर-पकड़ करने आया, तो कभी दरोगा साहब धमकाने आये। मगर पर्वाह किसे थी और सुनता कौन था?

जबर्दस्ती की नौबत देख, सभी किसान आपस में लिपट कर बैठ गये। और, पुलिस की सेना अवाक् थी! आखिर करती भी क्या? अतः, वापस आ गयी।

एक बार यों ही धक्का-मुक्की भी किसी कांस्टेबुल के साथ हो गयी। वह बहुत शेखी बघारने और नवाबी जो करने लगा था! इस पर बलवे का केस भी उन गरीबों पर चला। पीछे दफा १०८ का भी वार हुआ। मगर सब बेकार।

कहते हैं कि "सौ वक्ताओं को एक चुप्पी साधने वाला हरा देता

है।" ठीक अनुवां में भी जमीदार, सरकार और पुलिस की हजार कोशिशों को मुट्ठी भर गरीब और निस्सहाय किसानों के दृढ़ संकल्प, उनकी धुन, आपसी एकता और निर्भीकता ने निष्फल कर दिया और किसी की एक न चली !

किसान लोग बीच-बीच में एक लीला भी करते थे। जमीदार तो मरा जा रहा था खर्च के भार और परेशानी से। उसका काम भी कुछ होता न था। नया धनी था। इसलिए रुपये की भी ममता उसे काफी थी। मगर किसानों का काम बेखटके चलता था। एक कौड़ी का भी खर्च न था। इसलिए जहां जमीदार पस्तहिम्मत था, वहां किसानों को हिम्मत थी। फलतः, कभी-कभी अपने खेतों की साग-तरकारी तोड़ कर अपने लड़कों के द्वारा उसी हाकिम के पास भेजवा देते, जिसके यहां इनका केस था। लड़के लोग जाते और चुपके से वहां साग-तरकारी आदि रख कर सिर्फ इतना ही सुना देते कि यह उसी खेत की है जिसके बारे में झगड़ा है और जिसके सम्बंध में जमीदार का दावा है कि उसका कब्जा है न कि हमारा ! मगर हम तो उन्हीं किसानों के बच्चे हैं !

इस प्रकार अपने कब्जे के विषय में वे जीता-जागता सबूत पेश कर आते। यह भी कह आते कि शक हो, तो चल कर देख लीजिये न !

इस तरह सब कुछ करके जमीदार, पुलिस और सरकार थक गयी, मगर किसानों को टस से मस न कर सकी। कभी-कभी जो जोर-जबर्दस्ती की जाती, तो उसका विरोध हम लोग बाहर से भी करते। जब मामला बहुत दिनों तक यों ही टलता रहा, तो किसान सभा की ओर से गया के कलक्टर को लम्बा तार दिया गया कि किसानों का खेतों पर कब्जा है, जिसे कोई भी देख सकता है और जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता, फिर भी लगातार बहुत दिनों से उन्हें परेशान किया जा रहा है। यह चीज बहुत बुरी है। इसका नतीजा किसी के लिए भी अच्छा न होगा। बस, उसके बाद अधिकारियों ने देखा कि अब इस मामले को और टालना ठीक नहीं, शायद और भी गड़बड़ी हो। इसलिए उस समूची जमीन—एक सौ पन्द्रह बीघे पर—किसानों को कब्जा दे दिया गया !

जो लोग ऐसे संघर्षों में नहीं रहे या जिन्होंने इनका अनुभव नहीं किया है, उन्हें शायद विश्वास न हो। मगर बात तो पक्की है। किसी से छिपी नहीं है। कोई भी वहां जाकर जांच सकता है।

: ६ :

कोपाखुर्द, या छोटा कोपा, नाम से पुकारा जाने वाला एक मौजा, पटना जिले के नौबतपुर थाने में है। जैसी कि उस इलाके की दशा है, वहां भी छोटे-छोटे जमीदार बसते हैं। उनकी हालत पहले चाहे अच्छी रही हो, मगर इस समय तो वे तबाह हैं। फिर भी, जमीदारी शान तो रहती ही है। यह नहीं कि किसानों से मिल-जुल कर रहें और व्यर्थ के झमेले में न फंसे। वैसे तो जमीदारों के विरुद्ध किसान सभा ने कोई संगठित आवाज अब तक नहीं उठायी—खास कर जब बिना खेती के उनका काम चल ही नहीं सकता। मगर जमाना ही कुछ ऐसा है। जब एक बार किसानों में जागृति हो गयी और जमीन सम्बंधी अपना हक उन्होंने समझा, तो फिर वे यह देखने थोड़े ही जाते हैं कि खेतिहर जमीदार हैं या लगान वसूलने वाले पूरे बाबू।

विशेषत: जो किसान स्वयं भूखा है, वह दूसरे की भूख और गरीबी की पर्वाह कतई नहीं कर सकता। यह भी बात है कि कोपा के जमीदारों के विरुद्ध यद्यपि किसान सभा ने कोई काम नहीं किया था, तथापि किसान सभा को गाली देना उनका सनातन धर्म था। इसलिए स्वभावत: ही हमारे कार्यकर्त्ता उन लोगों से चिढ़ते जरूर थे। यह ठीक भी था। हम कुछ करें भी न, और आप हमें बदनाम करते जायें—यह कब तक चलने का?

बात हाल की ही है। इस मामले में किसानों को अन्ततोगत्वा सफलता तो नहीं मिली, यह बात ठीक है, मगर जिस तरह उन्होंने काम किया वह मार्के का है और उससे काफी शिक्षा मिलती है। और, अगर सफलता न मिली तो केवल इसलिए कि किसानों को लड़ाई की खुद जानकारी न होने और किसान सभा से मदद न लेने के कारण ही वे

गुमराह हुए । उन्होंने बेवकूफी में आकर जिद्द भी कर ली और समझौता करने पर राजी नहीं हुए। वे समझते थे कि उनका पक्ष मजबूत है, फलतः जरूर जीतेंगे। इसीलिए गड़बड़ी हुई। अगर थोड़ी-सी दूरंदेशी से वे लोग काम लेते, तो जमीन उन्हें मिल कर रहती। यह शिक्षा भी इस घटना से मिलती है। सिर्फ २५-३० बीघे जमीन का ही सवाल भी था !

हां, तो बात यह है कि छोटा कोपा में कुछ ग्वाले किसान गत सर्वे सेटलमेंट के पहले से ही बसते थे। इसीलिए सर्वे के समय उनके नाम से पचीस-तीस बीघा जमीन खतियान में दर्ज हो गयी थी। उसके बाद भी वे कुछ समय वहां रहे। मगर पीछे वहां से कई जगह जा बसे। जमीदारों के अत्याचार को वे लोग बर्दाश्त न कर सके। छोटे जमीदार लोग तो ज्यादा दिक करते भी हैं। सो भी यदि पड़ोसी हों, तो जुल्म और भी बढ़ जाता है !

जैसा कि आज तबाही की हालत में भी उनका मिजाज आसमान पर चढ़ा मालूम होता है, उससे अन्दाज लगता है कि पहले खूब खुल कर खेलते होंगे। तब गरीब किसानों का कोई पुर्साहाल था नहीं, फिर खटका ही क्या था ?

इसीलिए आये दिन घी, दूध, हरी, बेगारी, आदि, से ऊब कर भागने में ही उन गरीबों ने खैरियत समझी। किसान लोग ग्वाले ठहरे और आज की तरह पहले न तो उनकी यादव सभा ही थी और न उनके समाज में जागरण ही, जिससे किसान सभा के अभाव में उसी से कुछ कर सकते। सारांश, कोई त्राण न था। इसलिए घर-बार छोड़ कर भाग निकले श्रौर जहां-तहां जा बसे।

इधर जब बकाश्त की लड़ाई स्थान-स्थान पर शुरू हुई और किसानों को उसमें सफलता भी मिलने लगी, तो किसान-संसार में स्वभावतः ही आशा का संचार हुआ कि अब जमीन मिलेगी। यही आशा उन गरीबों में भी जागी। फिर उन्होंने सर्वे की खतियान देखी। अब क्या था ? कुछ लोगों ने राय दी कि उस जमीन पर अगर जा बैठो, तो तुम लोगों का दखल हो जाय।

कसर यही रही कि राय देने वाले पूरे जानकार न थे। बिहटा-

आश्रम पड़ोस में रहने पर भी, न जाने वहां मुझ से या मेरे आदमियों से पूछने भी क्यों न आये ? यही नहीं। मुझे ताज्जुब है कि अन्त तक भी मैंने उनमें एक का भी चेहरा न देखा। हारते-हारते भी वे मेरे पास न आये। ऐसा अन्दाज है कि समझ तो उनमें कम थी ही, साथ ही उन की जाति के लीडरों ने शायद उन्हें विश्वास दिला दिया था कि वहां मत जाओ, जमीन तो आसानी से हम ही दिला देंगे। कई घटनाओं से इस की पुष्टि भी होती है। जातीय नेता लोग आज-कल बोर्डों और कौंसिलों में जातीयता के नाम पर ही पहुंचना चाहते हैं और किसान सभा से इस बात में उन्हें खतरा मालूम होता है। इसीलिए, स्वभावतः, उन्होंने ऐसी राय दी होगी !

जो कुछ भी हो। बात तय पायी गयी और किसान लोगों ने उस जमीन पर दखल जमाने का निश्चय कर लिया। बसते थे तो ४-५ ही मील पर, मगर जमीदार और उसके आदमियों के सामने वहां जमना आसान न था। अगर लाठी और गिरोह लेकर जाते, तो पकड़े जाते और पुलिस फौरन उन्हें जेल में ठूंस देती। कब्जा भी सिद्ध न होता। बड़ी कठिनाई थी। कोई अक्ल सूझती न थी। मगर पीछे तो ऐसी सूझी कि जब मुझे मालूम हुआ, तो मैं भी दंग रह गया।

मैंने पहले-पहल वहीं लेनिन के इस कथन की सत्यता पायी कि हमें किसानों और जनता से अनेक बातें सीख कर औरों को सिखानीं चाहिए और इसी प्रकार उनकी लड़ाई चलानी चाहिए।

उन्होंने खूब सोच-साच कर एक रास्ता बहुत अच्छा निकाला, जिस से जमीदार, पुलिस और अधिकारी भी दंग रह गये। सौभाग्य से उनकी वह जमीन कोपा से कुछ हट कर एकान्त में पड़ती थी, जहां रात में सुनसान रहता था—न कोई गांव से आता, न जाता। उन्होंने सोचा कि एक ही रात में दखल का पूरा-पूरा प्रबन्ध और प्रमाण एकत्र कर देना चाहिए, दूसरे दिन तो मौका ही न लगेगा।

इसके लिए अंधेरी रात में, रातों-रात, वहां फूस के कुछ छप्पर, बैलों के खाने के लिए कुछ नादें, भूसा और नेवारी (पुआल), आदि, और एक कुआं बन जाना जरूरी था। कुछ ही घण्टों में ये सारी बातें हो जायें तो

ठीक। मगर यह तो वैसे ही था, जैसे कि समुद्र को सोखना, या हिमालय को उठा लेना ! वे लोग ४-५ मील के फासले पर रहते भी थे। अगर अपने घर पर हजार-दो-हजार आदमी इसके लिए जमा करते, तो शोहरत हो जाती। फिर तो पुलिस शक करती और वहां जा पहुंचती। अनायास जमावड़ा देख कर खामखाह लोगों को शक होता ही। बात भी फूट जाती।

एक बहुत जरूरी बात और थी। नये छप्पर, नया कुआं और बैलों के लिए खाने की नयी नादें धोखा देतीं। पुलिस और हाकिम लोग खामखाह ताड़ जाते कि ये तो फौरन बनी चीजें हैं। यदि ये लोग पहले से बसते रहते, तो सभी चीजें नयी कैसे रहतीं ? यह खतरा तो ऐसा था कि सब किये-कराये पर पानी ही फेर देता।

इसलिए मामूली दिमाग का काम न था कि इन सब कठिनाइयों का हल निकाले। मगर मैंने देखा है कि जब किसान अपना दिमाग किसी काम के लिए ठीक कर लेता है और उसमें आगा-पीछा नहीं रखता, तो न जाने कितने नये-नये रास्ते और उपाय उसके तूफानी दिमाग से बाहर आते रहते हैं। तब तो वह कमाल करता है। यही बात कोपा में भी हुई। किसानों ने खूब सोच-विचार कर इन सभी दिक्कतों को सुलझाते हुए एक सुन्दर रास्ता आखिर निकाल ही लिया !

उन किसानों ने तय कर लिया कि यहीं से पुराने छप्पर ज्यों के त्यों —उनके खम्भों वगैरा के साथ—उठा कर कोपा पहुंचाये और खड़े किये जायें। ऐसा भी किया जाय कि इन छप्परों पर जो कद्दू वगैरा की लत्तियां फैली हों, वे ज्यों की त्यों रहें। उनकी जड़ों के थल्ले ही खोद लिये जायें, तो ये लतायें हरी-हरी ही वहां पहुंचा कर जमीन में छप्पर पर फैली ही गाड़ दी जायें। यदि कुआं भी जरूरी है, तो उसके लिए रातों-रात खांखर खोदा जाय। फिर पुरानी ईंटें यहां से ही ले जाकर उन्हीं से कुआं तैयार कर डालें। पुआल की पुरानी ढेर जैसी की तैसी जमी-जमाई ही वहां पहुंचा दी जाय।

मगर यह काम पूरा करने के लिए तो कई हजार लोगों की फौज

चाहिए जो हाथों-हाथ लेकर चीजें पहुंचा दे और वहां भी पल मारते सब काम कर डाले।

इसलिए कोशिश करके प्रायः दो हजार लोगों को उस जगह तैयार कर दिया गया ! उन्हें ठीक वक्त पर पहुंच कर काम में लग जाने का आदेश भी दे दिया गया। यदि घड़ी की सुई की तरह ठीक समय पर काम न हुआ तो सब किये-कराये पर पानी ही फिर जायेगा, इसलिए काफी मुस्तैदी के साथ सभी तैयारी की गयी। ऐसा हिसाब लगा कर सब प्रबन्ध हुआ कि जरा भी कसर और किसी बात की कमी न रहने पायी !

फिर, निश्चित तारीख की रात में लोग जमा हो गये और हवा की तरह सभी चीजें कोपा में पहुंच गयीं। पुरानी पलानी (छप्पर) कद्दू, कुम्हड़ा, नेनुआ, वगैरा की हरी या सूखी लताओं के साथ ही वहां पहुंचा दी गयी। लतायें जमीन में ज्यों की त्यों गाड़ दी गयीं जिससे मालूम हो कि यहीं पर जमी थीं। पलानियों के छप्पर हू-ब-हू पुराने रहे, उनके खम्भे वगैरा भी। उन्हें ऐसे खड़ा किया गया कि पता ही न लगता था कि कहीं बाहर से आयी हैं—वहीं बहुत पहले ही बनी थीं, ज्यों की त्यों पड़ी हैं, ऐसा ही मालूम होता था। कुएं के लिए पानी के सोते तक, पल मारते गढ़ा खोद कर, टूटी-फूटी और मैली-कुचैली पुरानी ईंटों से ही उसे बांध कर तैयार कर दिया गया। मालूम होता था कि बहुत पुराना है। बैलों के लिए नादें बन गयीं। बैल उन्हीं पर बंधे-बंधाये खाने भी लगे। भूसा जमा कर दिया गया। पुआल की ढेर, हू-ब-हू पुरानी ही, वहां ला कर रख दी गयी।

खाना पकाना शुरू हो गया। बर्तन-भांड़े धो-धा कर जगह ऐसी बना दी गयी कि जैसे पुरानी हो। कहीं उपलों के ढेर जमा थे, तो कहीं बैलों के बांधने की जगह में उनके मूत्र और गोबर का ढेर देख कर कोई भी कह सकता था कि वे यहां बहुत दिनों से बांधे जाते हैं। राख-वाख के काफी ढेर भी गढ़े में कर दिये गये। सारांश, कोई भी कसर नहीं रहने पायी। जहां तक सूझा, पूरी तैयारी कर दी गयी।

जब कोपा वालों ने सुबह देखा कि वहां एक छोटा-सा टोला बसा

है तो दौड़े-दौड़ाये तमाशा देखने आये। वहां तो थोड़े से ही लोग मिले। बाकी तो अपना काम करके अन्धेरे में ही चलते बने थे। जो थे, वे अपनी घर-गिरस्ती के काम में लगे थे। जो ही देखता उसे ही पूछने की हिम्मत न होती क्योंकि बस्ती तो कुछ भी नयी न मालूम होती थी। सभी चीजें मुद्दतों की साफ-साफ दीखती थीं। मगर कल बस्ती थी नहीं, और आज पुरानी बस्ती यहां हो गयी! लोगों के ताज्जुब का ठिकाना न था!

अगर किसी ने पूछ भी दिया—कहां से आये हो और कैसे? तो हंस कर उत्तर मिलता था—सूझता नहीं है क्या? हम तो यहीं के पुराने बाशिन्दे हैं। आप लोग ही कहीं दूर-दराज के रहने वाले मालूम पड़ते हैं!

अजीब बात थी! वहीं के रहने वाले दूर-दराज के हो गये और दूर वाले वहां के! मगर चीज तो कुछ ऐसी ही थी! समां तो कुछ इसी ढंग का था!

जमीदारों को भी घबराहट हो गयी। उन्होंने उन खेतों में हल चलते देख रोक-टोक भी शुरू की। मगर ग्वाले लोगों ने डाट दिया—यह कह कर कि यदि सर्वे वाले हमारे खेतों पर रोक-टोक करेंगे तो ठीक न होगा।

चारों ओर शोहरत मची। जमीदार थाने पर गये। रुपये खर्च गये। पुलिस भी फौरन पहुंची। मगर करती क्या? यह निराला दृश्य देख कर हैरत में थी। कुआं, पलानी, वगैरा, सभी पुरानी चीजें थीं।

पूछने पर किसानों ने कहा कि हम तो यहीं के पुराने बाशिन्दे हैं। सर्वे के समय से ही हम लोग यहां पड़े हैं। चुपचाप खेती करते आते हैं। यह है खेत की खतियान और उसका नक्शा जिसमें यह गांव और हमारे खेत दर्ज हैं। अब जमीदार को नाहक जबर्दस्ती करने की सूझी है। वह हमें खेतों से बेदखल करना चाहता है, इसलिए जाल-फरेब कर रहा है। आखिर सर्वे के कागज तो गलत नहीं हो सकते। और क्या हम लोग पक्षी हैं कि रातों-रात उड़ कर यहां आ गये हैं? अगर आये भी तो ये

पुरानी पलानियां, पुराना कुआं, वगैरा, कहां से उड़ कर आ गये ? क्या जादू-मंतर के बल से कोई करामात हो गयी ? लोग पागलों की सी बातें करते रहते हैं जो समझ में नहीं आतीं !

दारोगा साहब ने सभी कागज-पत्र देखे और पूछताछ भी की। उन्होंने देखा कि बातें तो सही हैं। उन्होंने चौकीदारी का सवाल किया कि तुम लोग चौकीदारी की रसीद लाओ।

बोले—यदि यहीं रहते हो तो चौकीदारी तो लगती ही होगी।

किसानों ने कहा—हम क्या जानें चौकीदारी-फौकीदारी ? हम से न तो कभी किसी ने चौकीदारी मांगी और न हमने दी। हम निहायत गरीब हैं। शायद ऐसा ही समझ कर चौकीदारी हम पर नहीं लगी।

दारोगा भी चुप हो गये। आखिर करते क्या ? चौकीदारी सरपंच यदि चौकीदारी किसी से न वसूले, तो दोष किसका ? बिना मांगे क्यों कोई देगा ?

उस दिन तो पुलिस अपना-सा मुंह लेकर चली गयी। मगर वह हैरान थी कि थाने के पास ही यह पुराना गांव, और हमें पता तक नहीं ! चौकीदार भी नहीं बता सकता था। सचमुच कमाल की बात थी ! सभी की अक्ल गुम ! यह तो विचित्र सृष्टि थी ! गोया दूसरे ब्रह्मा ने तैयार की ! या कि स्वयं विश्वामित्र की ही यह रचना थी !

पुलिस की बदनामी भी थी कि उसकी जानकारी के बाहर यह टोला कैसे था। जमीदार को भी पूरी घबराहट थी—खास कर पुलिस के बैरंग लौट जाने और उसका रुख देखने से ! उसने सोचा, जमीन तो हाथ से निकली। इसलिए उसने काफी रुपये खर्चे। जिसकी-जिसकी पूजा-प्रतिष्ठा से काम चलने वाला था, भरपूर की गयी।

एक तरकीब सोची गयी कि इन खेतों में नहर का पानी आता है और उसका महसूल बराबर देना पड़ता है। उसकी रसीद तो हमारे ही पास है। उन लोगों के पास तो है नहीं। यदि वे जोतते थे तो नहर की रसीद दिखायें और लगान देने की रसीद भी पेश करें। पुलिस के सामने यह दलील पेश की गयी। साथ ही जो कुछ शिष्टाचार था, पूरा किया गया।

इधर किसान लोग तो फूले थे कि अब खेत तो हमारा हो ही गया, हमें कोई हटा नहीं सकता। इसलिए चुपचाप बैठे थे। न तो दौड़-धूप करते थे और न पैसा खर्च कर रहे थे। लोगों के समझाने पर भी उन्हें इसकी पर्वाह जरा भी न हुई! आखिर इस दुनिया में पैसे से बढ़ कर शक्तिमान कोई नहीं। पैसे से सब कुछ हो सकता है। मगर वे लोग पैसे की यह अपरम्पार महिमा समझ न सके। भोले-भाले ग्वाले ही तो ठहरे!

आखिरकार पुलिस और अधिकारियों की गहरी छान-बीन शुरू हुई। उधर जमीदारों ने घबरा कर सुलह कर लेनी चाही क्योंकि उनका पक्ष कमजोर नजर आता था। किसानों को हमने खबर भी भेजवायी कि सुलह कर लें—क्योंकि हम तो उनकी कमजोरी जानते थे! मगर उन्होंने एक न सुनी।

निदान, अधिकारियों की छान-बीन में उनसे कहा गया कि अगर खेत जोतते थे, लगान की रसीद पेश करो, क्योंकि यह जमीन तो बेलगान है नहीं। उन्होंने उत्तर दिया कि जमीदार लोग कभी रसीद देते ही नहीं। बात तो ठीक ही थी।

तब नहर की रसीद मांगी गयी।

अब तो मामला बेढब था। लगातार इतने दिनों से नहर का पानी आता रहे, तो उसके महसूल की रसीद तो चाहिए ही। उसके बारे में यह तो कह नहीं सकते कि नहर वाले देते ही नहीं—ठीक जमीदार की तरह।

इसलिए किसान लोग घबराये और सहसा कोई उत्तर न दे सके। उधर जमीदारों ने नहर की रसीद पेश कर दी, जिससे पुलिस को विश्वास करने का मौका मिला कि जरूर जमीदार ही यह खेत जोतते-बोते हैं। किसानों ने पीछे इसका उत्तर देने का विचार किया कि सोच-विचार कर कहेंगे। मगर पुलिस ने तो अपना हथकंडा पा लिया।

असल में किसानों ने नादानी की, जिससे सब कुछ किया-कराया चौपट हुआ। सुलह कर लेनी थी। मगर राजी न हुए। पहले भी, पूछ-ताछ कर यह काम किया न था। यह भी भारी भूल थी। नहर के

महसूल के बारे में ऐसा होता है कि बहुतेरे किसानों के खेतों का महसूल उन्हीं के देने पर भी जमीदार लोग अपने ही नाम से रसीद कटवा लेते हैं। मगर यह बात वे किसान समझते न थे, नहीं तो यही उत्तर देते। लेकिन यह उत्तर साधारणतः काफी नहीं समझा जाता और जमीदार का कब्जा सिद्ध हो जाता है, भले ही उन खेतों को जमीदार सपने में भी न जोतता रहा हो। ऐसे मौके अनेक आये हैं। पुलिस और हाकिम कागजी सबूतों पर पूरा यकीन करते हैं। इसी से जमीदार फायदा उठाते हैं।

कोपा में तो बात भी यही थी कि जमीदार ही असल में जोतते थे। मगर न भी जोतते रहते, तो भी नहर वाली रसीद ही काफी थी।

नतीजा यह हुआ कि पुलिस ने जमीदारों के पक्ष में ही खूब कस कर रिपोर्ट लिखी और किसानों को जबर्दस्ती करने वाला साबित किया। फलतः खेत मिलना तो दूर रहा, वे लोग गिरफ्तार हुए और उन पर मुकदमा चलने लगा। वे लोग अब कचहरी में खूब दौड़े, रुपये भी उन्होंने काफी खर्चे और परेशानी भी खूब ही उठायी। मगर अब होता क्या? "समय चूकि पुनि का पछिताने?" यही बात यदि पहले की जाती और वे लोग दूरंदेशी से काम लेते, तो और ही बात होती।

अन्त में वे लोग हारे और उन्हें जेल की सजा भोगनी पड़ी।

मुझे इस बात की खास तकलीफ थी कि इतनी खूबी के साथ सब कुछ करके भी, वे लोग सफल न हो सके। खुद-ब-खुद रास्ता सोच निकालना, जिसे अंग्रेजी में initiative लेना कहते हैं, सो भी बहुत खूबी के साथ, मैं यही चीज किसानों में सर्वत्र देखना चाहता हूं क्योंकि बिना इसके वे लोग स्वावलम्बी और विजयी न होंगे और नेता लोग उन्हें बराबर ठगते रहेंगे।

उन किसानों ने यह बात तो की, और खूब ही की। फिर भी हारे, इसी का दुःख मुझे सदा रहेगा।

लेकिन यदि आगे के लिए किसान इससे सीख जायें कि एक तो नाहक फूल जाना ठीक नहीं, दूसरे ऐसे मौके पर बिना किसान सभा से पूछे कुछ नहीं करना चाहिए, तो संतोष की बात होगी।

●

सहबाजपुर नाम का गांव, नियामतपुर आश्रम के नजदीक ही बेला थाने, गया जिले, में है। प्रधानतया वह क्षत्रियों की बस्ती है। जमीदार वही राजा अमावां-टेकारी हैं।

ये किसान पहले तो सम्पन्न थे। मगर अब तो गरीबी की मूर्ति बन गये हैं। न नैनीताल-शिमला की सैर करते रहे, न बड़ी-बड़ी पार्टियां दीं, न नाच-मुजरे और महफिलों में रुपये गंवाये और न ठाठ-बाट या साज-सामान में ही। कम से कम इस बात का सबूत तो है नहीं। बूढ़े लोगों के स्मरण में भी यह बात नहीं है, जिसके मानी हैं कि कम से कम साठ-सत्तर साल से उनमें कोई ऐसी बात न हुई। फिर गरीब हुए क्यों?

क्या जमीदार और उनके दोस्त इस बात पर कभी ठंडे दिल से सोचने का कष्ट करते हैं? जिस प्रकार गैरों की कमाई से ऐश उड़ाने का हक वे लोग अपने लिए समझते हैं, क्या उसी प्रकार यह भी सोचते हैं कि उन किसानों को भी आदमी की तरह जीने का हक है? अगर उन्हें लगान वसूलने का कानूनी हक है, तो किसानों को भी इन्सान की तरह जिन्दा रहने का कानूनी और नैतिक—दोनों ही तरह का—हक है। क्या यह बात वे लोग मानते हैं? यदि मानते, तो उनकी निर्दयता-पूर्ण लूट जारी न रहती। और, जो हृदयहीन हरकत उनके अफसरों ने सहबाजपुर में की, वह कभी न होने पाती!

उन्हें याद रखना चाहिए कि मनुष्य की तरह जीवन यापन करने का हक सभी कानूनी, नैतिक या लाठी के हकों से कहीं बड़ा है। मौका आने पर उन हकों को मिटा कर भी इसे कायम रखना जरूरी है क्योंकि उनका भी आधार यही है। यदि किसान जीवित ही न रहें, या हैवान बन जायें, तो फिर जमीदारों को कानूनी हक हासिल कैसे होगा? जो

मुर्गी सोने के अंडे एक-एक करके बराबर देती रहती है, अगर लोभवश उसका पेट फाड़ दिया जाय, तो सभी अंडे गायब हो जायेंगे ! क्या यह बात उन्हें याद है ?

नहीं। यदि याद होती तो किसानों में यह हाहाकार न मचने पाता।

हां, तो जमीन भी वहां की अच्छी और उपजाऊ नहीं है। ऊसर है। किसान लोग मर-जी कर कुछ पैदा करते थे, सही। मगर बहुत ज्यादा लगान चुकता करने के बाद गुजर के लिए कुछ भी बचता ही न था। वैसी जमीन का लगान तो रहना ही न चाहिए था। अगर होता भी, तो सिर्फ दो-चार आना बीघा।

नतीजा यह हुआ कि किसानों की जमीनें, सारी की सारी, लगान की डिग्री में नीलाम हो गयीं ! मगर ऐसी जमीनों को आखिर पूछे कौन ? अगर अच्छी हों तो जमीदार उनमें अपनी खेती भी करवायें। परन्तु ऊसर लेकर क्या करें ! ऊसर में तो सारा खर्च बेकार जाय और पता भी लगे कि किसान क्यों लगान न दे सके। दूसरे गांव के किसान भी वह गले की फांसी लेकर क्या करें ? उस गाय को कौन खरीदे जो न ब्याई हो और न गाभिन होने के योग्य ?

इसलिए मजबूरन उन्हीं किसानों के पास वे जमीनें रह गयीं। वे जोतते-बोते थे। जमीदार फसल में ही बंटवारा कर लेता था और उसके अमले लोग जब चाहते, एक किसान से छीन कर दूसरे को दे देते थे ! फलतः, किसानों को जमीदार से ज्यादा उसके अमलों की ही खुशामद करनी पड़ती थी।

मगर किसान-आन्दोलन को देख कर जमीदार के आदमी चिहुंके। उन्होंने सोचा कि कानून की आंख में धूल झोंक कर और बेइमानी करके जो किसानों की जमीनें वे छीनते रहते हैं, वह अब न चलेगा। अब तो किसान डटने लगेंगे। अपना हिस्सा लेकर भी रसीद तो देते नहीं, यह बात सही है। इससे उनके कब्जे का कागजी सबूत तो है नहीं। मगर अगर वे छोड़ने से इन्कार करें, तो मामला बेढब हो सकता है। इसलिए आफत आने के पूर्व ही उसका उपाय कर लिया जाय तो ठीक।

फिर तो सारा प्रोग्राम तय हो गया। उन्होंने सोच-साच कर सब

तय किया। सोचा गया कि धान की फसल कट कर जब खलिहान में पहुंच जाय, तो एकाएक दावा ठोंक दिया जाय कि यह गल्ला जमीदार का है, उसके नजदीक कोई न जाय।

गांव के ही कुछ लोगों को फोड़ कर जमीदार अपने नौकर और लठधर भी रखते हैं और उन्हीं के बल पर किसानों को सर करते रहते हैं। वही हिसाब यहां भी लगाया गया। ठीक ही है, हाथी को हाथी ही फंसाता है।

ठीक यही हुआ ! जब समूची फसल काट कर किसानों ने खलिहान में जमा कर दी, तो राजा अमावां के लठधर दूत वहां जा डटे। उन्होंने किसानों को डाट कर कहा—नजदीक न आओ ! खबरदार, यह तो मालिक (जमीदार) की फसल है ! तुम्हारा इसमें क्या है ?

बड़ी अजीब बात थी। किसान आश्चर्य में थे। दिन में जगे-जगाये स्वप्न कैसे होने लगा ? वे मन ही मन कहते कि यह क्या बला हुई ! हम तो बराबर जमीदार का हिस्सा, उसके अमलों की पूजा, नजर के साथ, चुका ही देते थे—फिर यह क्या बात हुई ?

मगर पूछने पर उत्तर कौन दे ? लठधर लोग तो सिर्फ लाठी की बात कह सकते थे !

अत: जमीदार की कचहरी—बेला—तक दौड़-धूप हुई। मगर सब बेकार ! किसी-किसी ने कहा—तुम लोगों को किसान सभा सूझी है ! जाओ न, किसान सभा में ? यहां क्यों आये हो ? नियामतपुर आश्रम तो नजदीक ही है ! अब क्यों नहीं वहां जाते ? खबरदार, खेत पर गये तो दफा १८८ और १०७ की कार्यवाही हो जायगी और बड़े घर (जेल) की हवा खानी होगी !

असल में पुलिस को भी सभी प्रकार से पहले से ही तैयार कर लिया गया था। तब वह हमला हुआ।

लाचार किसान लोग पंडित यदुनन्दन शर्मा के पास आश्रम में गये और सब दुखड़ा सुनाया। शर्मा जी ने पूछा—डटोगे ? बाल-बच्चों के साथ खलिहान में जा कर पड़ोगे ? या कि झूठी राजपूती शान आकर खड़ी होगी और 'स्त्री कैसे पर्दे के बाहर जाय, बहू कैसे जाय, लड़की

जवान है वह कैसे जाय', आदि, आगा-पीछा की बातें होंगी ? साफ बोलो। यदि सारा गांव परिवार के साथ घर-बार छोड़ कर खलिहान को ही घर बनाने और वहीं पशु, बकरी, आदि, रखने को तैयार हो, तो अभी जीत हो जायगी। नहीं तो तैयार फसल जायगी, खेत जायगा और भूखों मरने की नौबत होगी। इतना ही नहीं। "बुढ़िया के मरने का डर नहीं, मगर यम का रास्ता जो खुल जायगा।" सहबाजपुर वाले हार जायें तो हार जायें। हमें उतनी पर्वाह नहीं। मगर इसके चलते जमीदार की जो हिम्मत बढ़ेगी, उसका भयंकर दुष्परिणाम, दूसरे किसानों को भी भोगना होगा। फिर तो न सिर्फ अमावां-टेकारी के जमीदार का, बल्कि सभी जमीदारों का, तांडव-नृत्य शुरू हो जायगा। इसलिए अच्छी तरह सोच लो, तब उत्तर दो।

किसानों ने आगा-पीछा जरूर किया—क्योंकि वे तो बिना परिश्रम कोई जादू-मंतर की तरह रास्ता चाहते थे जैसी कि उनकी सदा, सर्वत्र, आदत होती है। किसान समझते हैं कि किसान सभा वाले स्वयं कुछ कर-करा कर जमीन और फसल दिला देंगे। वे यह भी समझने की नादानी करते हैं कि हम लोग जमीदारों से कह-सुन कर ही दिलवा देंगे। उन्हें इतनी समझ नहीं कि एक ओर तो हम जमीदारों से बराबर लड़ते और जमीदारी मिटाने पर तुले बैठे हैं, दूसरी तरफ वे हमारी ही बात मानें यह कैसे हो सकता है जब तक यह न हो कि हमारा सारा आन्दोलन और जमीदारी मिटाने की बात केवल ऊपरी और धोखे की टट्टी हो ? आखिर जमीदार बेवकूफ तो होते नहीं। वे तो गुरु-घंटाल और पूरे चालाक होते हैं। वे अपना स्वार्थ खूब जानते हैं।

लेकिन अन्त में दूसरा रास्ता न देख, वे तैयार हो गये। शर्मा जी को वचन दे दिया कि—हां डटेंगे।

फिर तो हुक्म हो गया कि जाइए और अभी से शुरू कर दीजिए।

उधर जमीदार ने जिले के बड़े-से-बड़े अफसरों तक को उल्टा-सीधा समझा कर अपने पक्ष में ठीक कर रखा था। उनके लिए तो केवल किसान सभा का हौवा ही काफी था। अधिकारी वर्ग के कान तो इतने से ही खड़े हो जाते थे !

एक बात और थी। राजा अमावां के एक सर्किल आफिसर बाबू शिवबचन सिंह बड़े तेज और चालाक अफसर माने जाते हैं। समझा जाता है कि अतरी परगने के सरगना और जोरावर राजपूत-किसानों को उन्हीं ने सर किया था। वह वहीं रहते भी थे। सहबाजपुर के किसान भी तो राजपूत ही हैं। इसलिए वही यहां के लिए भी जवाब-देह बनाये गये।

वह कांग्रेसी और खादीधारी भी माने जाते हैं। जमीदार और उसका बड़ा अफसर यदि सिर्फ खद्दर पहन ले, तो भी पक्का कांग्रेसिया माना जाता है! फलतः "एक तो डाइन, दूसरे हाथ में जलती लुकाठी।" उन्होंने इसकी काफी तैयारी भी कर ली थी कि सहबाजपुर को सर करके नामवरी और भी लूटूंगा।

जब किसानों का परिवार घर से निकल कर खलिहान की ओर चला, तो अजीब दृश्य था। किसान सभा (गया) ने उसके कई फोटो ले रखे हैं, उनसे उस संग्राम का पूरा चित्र सामने आ जाता है।

औरतें, खास कर नयी और जवान औरतें, बाहर आने में हिचकती थीं। वह काफिला आगा-पीछा करता हुआ खलिहान में पहुंचा सही, मगर औरतें पास के पेड़ों में छिप कर ठहरीं। किसी का पर्दे में मुंह था और किसी का पेड़ की ओट में।

यह क्या?

आवाज हुई—यह ठीक नहीं; सारे खलिहान को घेर कर बैठ जाना होगा, जिससे जमीदार के आदमी उसे छू न सकें और अगर छूना भी चाहें तो मर्दों, स्त्रियों और बच्चों की छाती पर से ही उन्हें गुजरना पड़े! आखिर यही हुआ और घेरा पड़ गया। न जाने पुराने जमाने में कैसे घेरे पड़ते थे। मगर यह तो बीसवीं शताब्दी के चतुर्थ दशक का घेरा था!

वहीं पास में बैल, आदि, बंध गये। ओखली, मूसल, चूल्हा, चक्की, बर्तन, भांड़े सभी वहीं लाये गये। धान से पुआल जुदा करके पशुओं को खिलाया जाता। धान का चावल बना कर खाना पकता था। ठीक जिस प्रकार खानाबदोश और बराबर घूमने वाले कन्जर और नट लोग

करते हैं, वही हालत वहां हो गयी। लड़ाई में सब कुछ करना ही पड़ता है!

अब तो जमीदार के घर में खलबली मची। वह तो और ही हिसाब लगा रहे थे। मगर अब क्या करें? किसे-किसे पकड़ें और जेल भेजें?

और पकड़े भी कौन? औरतों और बच्चों पर हाथ कौन डाले? बड़ी परेशानी थी। कुछ सूझता नहीं था। लगातार हफ्तों यह घेरा पड़ा रहा!

उधर पुलिस के छोटे-बड़े सभी अफसरान और दूसरे अधिकारी—मजिस्ट्रेट तक—आते-जाते और बराबर समझाने की कोशिश करते रहे। मगर सुने कौन? सुनने वाला तो नियामतपुर आश्रम में बैठा था। किसान तो पूरे बहरे बन बैठे थे। कभी-कभी बहरा बनना भी लाभदायक होता है!

यह भी पता लगा कि बाबू शिवबचन सिंह अतरी से बेला तक घोड़े की पीठ पर चढ़ कर न जाने कितनी बार आये-गये, खास कर रातों-रात। लठधरों और मुस्तण्डों को भी जमा किया। पुलिस की सेना भी आयी कि सारा गल्ला उठवा कर बात की बात में दूसरी जगह पहुंचवा दें और किसान मुंह ताकते रह जायें। यह भी मालूम हुआ कि इस दौड़-धूप और तैयारी में जमीदार के दो हजार रुपये स्वाहा हो गये! मगर नतीजा कुछ न हुआ।

शर्मा जी ने तो पहले ही यह खतरा समझा था, इसलिए पूरा-पूरा घेरा डालने की राय शुरू में ही दे दी थी। किसानों को सजग भी कर दिया था। इसीलिए किसी की एक न चली और किसान जीते।

पहले तो, न तो पुलिस ही कुछ सुनने को रवादार थी और न हाकिम-हुक्काम ही। वे लोग नीलाम और दखल-दिहानी के कागजों को देख कर यही कहते थे कि जमीदार की ही जमीन है और फसल भी। मगर अब हार कर सुनने को तैयार हुए और मजिस्ट्रेट ने वचन दिया कि समझौता करवा देंगे। तब कहीं जाकर शर्मा जी की आज्ञा से घेरा उठा, नहीं तो बराबर हमारे कार्यकर्ता वहीं रहते थे और किसानों को प्रोत्साहित करते रहते थे।

आखिरकार जब जमींदार और उसके अफसरों का मद चूर्ण हुआ, सरकार भी परेशान हुई, तभी समझौते की बात चली।

पहले चलती तो जमींदार की फजीती तो न होती!

फिर तो अधिकारियों ने माना कि अगर जमींदार की फसल होती, तो बीसियों ढेरें क्यों लगायी जातीं? तब तो एक ही जगह एक प्रकार की फसल जमा रहती। उसी प्रकार, ऊख की खेती छोटे-छोटे खेतों में सैंकड़ों जगह क्यों रहती? एक ही जगह या दो-चार जगह ही रहती। यह भी पता लगाया गया कि इतने खेतों के लिए बैल, हल और खेती के सामान जमींदार के पास कहां हैं? बैलों के खाने की नादें और उनके लिए काफी भूसा, पुआल, वगैरा भी कहां है?

अगर उन्हें यह अक्ल पहले ही आ जाती तो क्या बुरा होता? यही नहीं। क्या उसके बाद भी उन्होंने ऐसे मौके पर इस अक्ल से काम लिया? हर्गिज नहीं।

खैर, सहबाजपुर के किसान तो जीते। यही नहीं कि उन्हें उनकी फसल और जमीन मिली, उनसे छीनी न गयी—बल्कि हाकिम ने भावली की नकदी, सो भी काफी कम, लगान करवा दी!

●

: ८ :

गुजरात प्रान्त के पंचमहल जिले में गोधरा के नजदीक गुसर नाम का एक गांव है। वहां किसान बसते हैं। गुजरात, काठियावाड़ और महाराष्ट्र में सूदखोर साहूकारों ने आतंक फैला रखा है। किसान उनसे ठीक उसी प्रकार थर्राते हैं जैसे हैजे और प्लेग से।

पता नहीं, बाहर के लोग क्या समझते हैं। मगर मुझे तो कई बार गुजरात में जाना और उसके हर जिले में दौरा करना पड़ा है। कहते हैं, गुजरात में तो क्या, बम्बई प्रान्त में ही, जमीदारी प्रथा नहीं है। वहां रैयतवारी है, जिसका अर्थ है कि किसान सीधे सरकार को ही जमीन का कर, लगान, या मालगुजारी देते हैं। मगर यह तो कहने मात्र की बात है। वहां तो असली किसानों के पास जमीनें रह ही नहीं गयी हैं। उनकी सारी जमीनें साहूकारों ने ले ली हैं और किसानों की जगह वे ही बैठ गये हैं।

वे खुद तो खेती करते नहीं। उन्हीं किसानों को अर्द्ध भाग या बंटाई पर खेतों को देते हैं, जिनके पास पहले वे खेत थे। बंटाई की हालत यह है कि किसान अपने हल, बैल, परिश्रम, से खेती करते हैं। साहूकार लोग खेती में जरा भी मदद नहीं करते। मगर फसल पकते ही आधा हिस्सा लेते हैं। खूबी तो यह कि सिर्फ ज्वार, बाजरा, वगैरा गल्ले में ही नहीं, बल्कि रुई और मूंगफली, आदि, किराना पैदावार में भी आधा हिस्सा लेते हैं! यहां तक कि बड़ौदा राज्य में, जहां फसल में बंटवारा न करके नकद लगान लेने का ही उन्हें हक है, वहां भी बंटाई ही करते हैं!

इसीलिए तो गुजरात प्रान्तीय किसान सभा की ओर से श्री इंदुलाल याज्ञिक और श्री पंगारकर, आदि, को वहां किसानों की सीधी लड़ाई

चलानी पड़ी। फलतः किसानों ने फसल बांटने से इन्कार कर दिया। मांगरौल तालुके, आदि, के संघर्ष का यही रहस्य है।

यही नहीं। जब फसल किसी कारण से मारी जाती, या अच्छी नहीं होती, तो साहूकार किसान से नकद रुपये ही वसूल करता है।

किसान सभा की स्थापना से पूर्व, वहां किसी ने यह प्रश्न उठाया तक नहीं और न बाहरी दुनिया को इसका पता ही था कि वहां—गांधी जी के प्रान्त में—दिन-दहाड़े कैसी लूट जारी है!

लोग अभी तक यही समझते हैं कि बारदौली में जो लड़ाई या सत्याग्रह हुआ और जिसके चलते श्री बल्लभ भाई सरदार तथा किसान हितैषी ख्यात हुए, वह किसानों की लड़ाई थी। मैं भी तो यही समझता था। मगर वहां जाने पर पता चला कि वह लड़ाई तो उन्हीं साहूकारों और धनियों की थी, जिनकी संख्या प्रतिशत दस-पन्द्रह से ज्यादा नहीं। ये ही जमीन के मालिक बन बैठे हैं।

वहां का असली किसान तो आज मजदूर और बटाईदार बन गया है। वही गुजरात का हाली, दुबला और रानीपरज है, जो असल में पहले जमीन का मालिक और किसान था मगर जिसकी सारी जमीनें इन्हीं लुटेरे साहूकारों ने छल-प्रपंच से छीन लीं और नकली किसान बन बैठे।

आज तो वे हाली, दुबला और रानीपरज उन्हीं के गुलाम हैं—ठीक उसी प्रकार जैसे पुराने जमाने में गुलाम (Slave and serf) होते थे। स्त्री और पुरुष दोनों ही जिन्दगी भर के लिए उनके पास बिक गये हैं। उनकी सन्तानों की भी यही हालत रहती है।

यदि ये गुलाम किसी मालिक (साहूकार) को छोड़ कर भागें, तो कहीं रहने नहीं पाते! कोई उन्हें नौकर भी नहीं रख सकता! सभी पूछते हैं—तुम कहां से आये, किसके यहां रहते थे, आदि-आदि। जिसके पास से वह भागता है, उसके मुस्तण्डे पठान फौरन दौड़ पड़ते हैं और दस-बीस मील के भीतर ढूंढ़-ढांढ़ कर पशु की तरह पकड़ लाते हैं!

हां, अब हमारी किसान सभा ने उन्हें बहुत-कुछ निर्भीक बना दिया

है। अब तो मारे-पीटे जाने पर, साहूकारों को ठोंक कर वे चले आते हैं !

यह गुलामी धीरे-धीरे मिट रही है। उनके दिमाग में एक गलत ख्याल था, इसी से गुलामी करते थे। अब समझ गये कि वह भूल थी ; हम आजाद हैं। बस, वह तो निरा सपना था। अब जागने पर मिट गया !

हां, तो उस गुसर मौजे को भी साहूकारों ने तबाह कर रखा था। एक रुपये के दस रुपये लिये, फिर भी उनके हिसाब में बीस बाकी रहे ! शैतान की अंतड़ी की तरह वह हिसाब कभी खतम होता ही नहीं ! जब किसान सभा का जमाना आया, तो सन् १९३८ ई. के शुरू से ही —क्योंकि गुजरात में पहले किसान सभा थी नहीं—किसान अपना हक समझने लगे और जागने लगे। उनमें हिम्मत और मुस्तैदी भी आने लगी।

मैंने अपनी आंखों से देखा है कि वे किसान सभा से कितना प्रेम करते हैं, किस उमंग से उसे अपनाते हैं। उनके इस अगाध प्रेम और उत्साह ने मुझे बार-बार मुग्ध किया है। फलतः, वे लोग साहूकारों से जहां पहले चूं भी न कर सकते थे, प्रत्युत थर्राते रहते थे, वहां अब सवाल-जवाब करने लगे हैं ! हक की बातें करते हैं ! कभी-कभी फटकार भी सुना देते हैं कि—जाओ, जो करना है करो !

उस गुसर के किसानों में एक बूढ़े श्री जवेर भाई भी हैं। दुबले-पतले आदमी। कद भी मझोला। सिर तथा दाढ़ी के बाल एकदम सफेद। सिर पर हल्की सी पगड़ी बांधते हैं। यद्यपि उम्र काफी हो गयी, तथापि शरीर में फुर्ती है।

मैं एक बार उनका लेक्चर गुजराती में सुन कर गद्‌गद हो गया। बायीं हथेली पर रह-रह कर दाहिनी को ठोकते जाते और देहात की भाषा में किसानों के दिलों में चुभ जाने वाली बातें इस ढंग से कहते थे कि सभी किसान मस्त होकर सुनते थे। उस भाषण ने मेरे दिल पर बड़ा असर किया। मैंने कहा कि ऐसे ही किसान जब पैदा हों, तभी

किसानों के कष्ट दूर होंगे। हमारा काम सिर्फ उन्हें पैदा कर देना या ढूंढ़ कर बाहर ले आना भर है।

जबेर भाई के सिर पर भी कर्ज का भार बहुत था। बेचारे ने बहुत कोशिश की कि उससे पिंड छूटे और साहूकार उन्हें बख्शे। जिंदगी भर देते-देते मरे। मगर साहूकार को राजी न कर सके—उसका पावना चुकता न कर सके।

भला मौत को भी कोई राजी कर पाता है? क्या उसका पावना कभी चुकता होता है? उसे तो जितना ही मिले, हजम करती जाती है। फिर भी आगे हाथ बढ़ाती ही रहती है। उसका पेट तो कभी भरता नहीं। यदि भरे तो फिर दुनिया खाली कैसे हो? इसीलिए कर्ज को पुराने लोगों ने आग बतलाया है, जो जलाती जाती और तेज होती रहती है।

फिर तो श्री जबेर भाई ऊब गये। कोई रास्ता उन्हें सूझता न था। वह इसी उधेड़बुन में थे कि किस प्रकार इस पाप से पिंड छूटे—कि किसान सभा का पैगाम आ गया। इससे किसानों एवं पीड़ितों में नव-जीवन तथा आशा का संचार हो गया। उन्होंने भी सूरत और बड़ौदा राज्य में साहूकारों के विरुद्ध किसानों की लड़ाई का समाचार जाना।

खुद श्री इन्दुलाल जी से जबेर भाई की मुलाकात और बातें भी हुईं। उनके यहां सभा भी हुई। वह बड़ी मुस्तैदी से सभा के काम में जुट गये। यहां तक की जब श्री इन्दुलाल जी और उनके साथी इधर आजादी की लड़ाई की बात लेकर जेल जाने की सोचने लगे, तो खास जबेर भाई ने उन्हें बेमुरव्वती से रोक कर कहा कि अभी तो हमारी किसान सभा की प्रारम्भिक दशा है, अभी किसान उठने लगे हैं, तब तक इस बीच में ही जेल की क्या बात?

आज जबेर भाई को रास्ता मिल गया। फलतः उन्होंने साहूकार से आखिरी बार निपट लेने की ठान ली। साहूकार लोग अक्सर गांवों में फेरी लगाते रहते हैं। इसी तरह उनकी कर्ज की वसूली चलती है। जिस गांव में आते हैं, उसके किसान पहले से ही तैयार रहते हैं। वे

किसी प्रकार या तो उन्हें खुश करते या चुपके से कहीं चले जाते हैं ! मगर साहूकार लोग तो अपने दूतों के द्वारा पहले से ही खास तौर से खबर करवा देते हैं ताकि किसान उस दिन हाजिर रहें। न रहने पर उनसे जवाब-तलब किया जाता है।

गुसर में भी एक दिन खबर आयी कि हजरत आने वाले हैं। जबेर भाई को तो विशेष रूप से खबर दी गयी थी। इसलिए वह भी तैयार बैठे थे। जब उन्होंने समझ लिया कि अब वह आने वाले ही हैं, उनका समय हो रहा है, तो दायें हाथ में एक दाव—जिसे गुजरात में धारिया कहते हैं और जो काफी तेज और बड़ा होता है—और बायें में एक मजबूत रस्सी लेकर अपने दरवाजे पर बैठ गये। धारिया खूब ही तलवार जैसा चमचमाता था। रस्सी भी रगड़ कर फांसी वाली रस्सी की तरह बना दी गयी थी। पास में ही थोड़ी सी सूखी घास तथा फूस पड़ी थी और एक दियासलाई भी।

जब उन्होंने साहूकार को आते देखा तो खुद ही उस रस्सी से सवाल किया : "बोल रस्सी, तू क्या चाहती है ?" नजर भी रस्सी पर ही थी। साहूकार को देखते न थे। फिर स्वयं ही रस्सी की तरफ से उत्तर दिया—"मैं चाहती हूं कि आज जब साहूकार आये तो उसे कस कर बांध दिया जाय, मेरी ही मदद से !" फिर धारिया की ओर देख कर बोले : "अच्छा, धारिया, अब तू बोल, क्या चाहता है ?" उसकी ओर से भी अपने आप बोल उठे—"मैं यही चाहता हूं कि रस्सी से बांधे जाने के बाद साहूकार के टुकड़े-टुकड़े मेरी ही सहायता से कर दिये जायें !" अन्त में घास, फूस और दियासलाई की तरफ देख कर पूछने लगे : "तुम लोग भी बता दो कि क्या चाहते हो !" आवाज निकली—"साहूकार के टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर हमारी ही मदद से वह यहीं पर जला दिया जाय, ताकि 'न रहे बांस, न बाजे बांसुरी।' "

अब तो साहूकार को चीरिये तो खून नहीं। वह तो डर के मारे दूर ही खड़ा रहा ! नजदीक आने की उसे हिम्मत ही न हुई। और, जो वहां से भागा तो फिर गुसर में आने का उसने नाम तक नहीं लिया !

उसे ख्याल हुआ कि जबेर भाई पागल हो गया है और ठिकाना

क्या—कि एक दिन वह सचमुच वही कर दे जो कहता था ! फिर तो कुछ न होगा। रुपये-पैसे तो आते-जाते रहते हैं, मगर जान तो फिर मिलने की नहीं। और जान से ही तो सब कुछ है।

उसे यह भी हिम्मत न हुई कि पुलिस के पास कोई रिपोर्ट करे। असल में साहूकार लोग तो डरपोक होते हैं। केवल बन्दरघुड़की से ही उनका काम चलता रहता है। फलतः यदि जरा भी हिम्मत की जाय और बन्दरघुड़की की पर्वाह न की जाय, तो वे बुरी तरह घबरा उठते हैं।

यही बात वहां भी हुई और जबेर भाई की हिकमत एवं हिम्मत काम कर गयी। साहूकार के आदमियों ने उसे हजार हिम्मत दिलायी कि चलिये, गुसर में आपका बाल भी बांका न होगा। मगर वह वहां नहीं आया तो नहीं आया ! घर से ही तकाजा करके जो कुछ वसूल कर सका वही किया !

मगर जबेर भाई के पास तो तकाजा भेजने की भी हिम्मत उसे न हुई ! उसे रह-रह कर उनके शब्द, उनका चेहरा, और धारिया वगैरा चीजें याद आती थीं ! फिर तो घबरा जाता था। कभी-कभी सोने के समय सपने में भी वही चीजें देखता होगा और यह भी देखता होगा कि जबेर भाई उसकी छाती पर सवार हैं। असल में भय ऐसी ही चीज है। इसी से उसने उनसे रुपये मांगने की बात ही छोड़ दी, ताकि उस कांड को वह भूल जायें। फलतः, जबेर भाई अनायास ही ऋण-मुक्त हो गये।

•

गया जिले के मझवे मौजे में मैंने किसान स्त्री-पुरुषों की जो जवांमर्दी और जो लगन देखी, उसे भूल नहीं सकता। जब तक वही बात सभी किसानों में नहीं आ जाती तब तक उनका उद्धार नहीं होगा, मैं ऐसा मानता हूं।

बकाश्त का संघर्ष बहुतों की दृष्टि में नामवरी का साधन है। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि इससे हमारा और किसान सभा का जमीदारों पर और अधिकारियों पर भी दबदबा बैठ जायगा।

मगर असल में यह तो किसानों के जीवन-मरण का प्रश्न है। यदि किसान इसमें जीतें तो वे रह सकते हैं, नहीं तो उनकी इंच-इंच जमीन छिन जायगी और उन्हें भूखों मरना होगा। बिना इस दृष्टि के काम चलने का नहीं—जब तक किसान यह न समझ लें कि इसी बकाश्त के संघर्ष में हम मर भी जायें तो कोई चिन्ता नहीं, हमारे बाल-बच्चे तो खायें-पियेंगे और जिन्दा रहेंगे; लेकिन अगर हमने प्राणों से मोह किया और लाठी से डर कर हम भागे तो हमारे लड़के-बच्चे जरूर भूखों मरेंगे।

मैंने यही लगन और यही धुन, मझवे के किसानों में पायी। मेरे दिमाग में तभी से यह बात घुस गयी कि बिना इस धुन के बकाश्त-संघर्ष अकारथ है। यदि धुन होगी, तो हम हार कर भी जीतेंगे और जमीन लेकर ही रहेंगे। मगर इसके बिना मिली-मिलायी जमीन भी चली जायगी, छिन जायगी।

मझवे मौजा बहुत ही जालिम जमीदारों का है। गया-क्यूल लाइन पर ही वहां फ्लैग (नन्हा-सा) स्टेशन भी है। गया से नवादा जाने वाली पक्की सड़क मझवे से होकर ही गुजरती है। वहां तीन-चार बड़े-बड़े

जमीदारों के सिवाय सभी किसान ही बसते हैं। उनकी संख्या काफी है। उनमें अधिकांश वे ही हैं जिन्हें समाज ने नीचे गिरा रखा है और बदकिस्मती से हम जिन्हें 'रैयान' और 'नीच' कहते हैं !

मैंने किसान-आन्दोलन के सिलसिले में न सिर्फ बिहार में, प्रत्युत अन्यत्र भी देखा है कि ये 'नीच' और 'रैयान' नामधारी असली किसान बात ठीक-ठीक समझ जाने पर मौका पड़ते ही कितना डटते हैं। बड़हिया टाल की लगातार तीन वर्षों की लड़ाई केवल इन तथाकथित 'रैयानों' की ही रही है। उसमें उन्होंने कमाल किया है। उन्हीं की लड़ाई में सरकारी अफसरों को खामखाह कहना पड़ा कि सचमुच यह शान्ति सेना है। दूसरी किसी जगह यह सर्टिफिकेट हमें नहीं प्राप्त हो सका !

बड़हिया टाल में जब हमारे एक कार्यकर्ता पर जमीदारों के आदमियों की लाठियां बरस रही थीं और वह बेहोश पड़ा था, तो इन्हीं 'रैयानों' की एक औरत ने उसके ऊपर लेट कर लाठियां स्वयं अपने सिर एवं देह पर ले लीं। और, उसे मरने से बचाया !

ऐसी घटना हमें और जगह नहीं मिली कि अपनी जान पर खेल कर एक किसान औरत हमारे कार्यकर्ता का—जो बाहर से गया था और निस्संदेह रैयान जाति का नहीं था—बचाये ! उसे विश्वास था कि यह कार्यकर्ता उसको और उसके परिवार को रोटी दिलाने वाला है, इसी से अपनी जान से भी ज्यादा उसकी कीमत उसने की।

जब बड़हिया गांव में इन्हीं 'रैयानों' का जुलूस वहां के 'अशराफ' जमीदार रोकना तथा लाठी के बल से कानून अपने हाथ में लेना चाहते थे, तो ये लोग डट गये। और, सिर तथा देह से खून की धार बहते रहने पर भी, जुलूस निकाल कर ही छोड़ा !

हमें सचमुच इसका गर्व हुआ जब हमने श्री पंचानन शर्मा के नेतृत्व में इनकी बहादुरी का वृत्तान्त सुना कि लाठियां बरसती थीं और ये बराबर बढ़ते चले जाते थे ! पुलिस खड़ी तमाशा देखती थी। वह जमीदारों के डर से चूं न कर सकी।

उसके बाद फौरन ही किसान-सम्मेलन के मंच पर इन काले-कलूटे

'रैयानों' को बैठा कर हमने और हमारी सभा ने अपने को कृतकृत्य माना जबकि इनके शरीर और कपड़े खून से लथपथ थे; इनके सिर पर पट्टी बंधी थी। इन 'रैयानों' ने ही किसान सभा को अजर-अमर और श्री कार्यानन्द शर्मा को बड़हिया टाल का योद्धा बना दिया !

ऐसे ही रैयान मझवे में हैं। वे आषाढ़ के महीने में बरसात में अपने खेत पर जा डटे जबकि खद्दरधारी और कांग्रेसी जमीदारों ने लाठी के बल से उन्हें बेदखल करना चाहा। एक जमीदार साहब न सिर्फ नयी प्रांतीय कौंसिल (अपर चेम्बर) के कांग्रेसी मेम्बर हैं, बल्कि एक प्रसिद्ध कांग्रेसी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के मेम्बर एवं किसान कार्यकर्त्ता के ससुर भी हैं। गया की अजीब हालत है। शुरू से ही कांग्रेस नेताओं की बिहार में नीति यही रही है कि दो-एक जमीदारों को जैसे-तैसे जेल पहुंचा कर और बाकियों को खद्दर पहना कर कांग्रेसी घोषित कर देना। फिर तो वे लोग सांड़ बन कर खुले चरते और निर्भय रहते हैं। वे जितना भी जुल्म करें, सब छिप सकता है।

बड़हिया, तेउस वगैरा गांवों में यही हुआ। मझवे में भी यही हो रहा है। इसीलिए वहां दिक्कत बढ़ गयी। मगर जब किसान लोग डटे तो एक बार तो हैरत में आना पड़ा ! अधिकारियों एवं जमीदारों तक को दातों तले उंगली दबानी पड़ी। उन्होंने सुलह और पंचायत की बात की; कमिश्नर ने कहा कि पंचायत से तय करा दिया जायगा। इस पर संघर्ष तो रुका। मगर पंचायत में और-और कांग्रेसी जमीदारों के साथ मिल कर, उन लोगों ने ऐसी लीपा-पोती की कि वह बात न कहना ही उचित है।

घटना के दिन जब मैं वहां गया, तो देखता हूं कि कई किसान मर्द और दो-चार औरतें खेत में मौजूद हैं। औरतें ज्यादा उम्र की थीं; जवान शायद ही थीं। उनके हाथों में झंडे थे। चोट तो उन्हें भी लाठियों की लगी थी। मगर मर्दों को सख्त चोट थी। उनके सिर फूटे थे। शरीर में दूसरी जगह भी मार पड़ी थी। वे टूटी-फूटी खाटों पर पड़े थे। धीरे-धीरे बूंदें पड़ रही थीं। उनसे बचने का कोई भी उपाय न था। गांव के स्त्री-पुरुषों में उत्साह की बिजली दौड़ रही थी।

जब हमारे आदमियों ने उन्हें उठा कर घर में या छाया में ले चलने की इच्छा प्रकट की तो उनका उत्तर मिला कि हम लोग तो यहीं पड़े रहेंगे। मरेंगे तो क्या? जमीन तो मिलेगी और बाल-बच्चे तो जिन्दा रहेंगे! यों भी तो भूखों मरना ही है! फिर यहीं क्यों न मरें? यहां से हटे, तो जमीदार का हल चलेगा और पुलिस कहेगी कि उसी ने जोता-बोया है। फिर हाकिम उसी के पक्ष में फैसला देगा। मगर यहां पड़े रहने पर यह बात होने की नहीं। हमने इसीलिए मार भी खायी है। यदि हटे तो यह मार खाना बेकार होगा।

मैंने जब उनकी यह बात सुनी—हां, उन अपढ़ "रैयानों" की—और स्वयं उनसे बातें कीं, उनकी हालत देखी, तो जी भर आया। मेरे मन में आया कि कैसे जमीदारी को खोद कर इतना नीचे गाड़ दूं कि वह हमेशा के लिए खत्म हो जाय! मेरा सिर उन स्त्री-पुरुषों के सामने सहसा झुक गया। मैंने दिल में कहा—तुम्हीं लोग, तुम्हारे-जैसे "रैयान" और "नीच" स्त्री-पुरुष ही, किसान सभा को बल देंगे। मुझे यह भी कहना पड़ा कि पापी समाज को तुम्हें "रैयान" और "नीच" बनाने के महापाप का प्रायश्चित भी शीघ्र ही करना पड़ेगा—यदि उसे और किसानों को अपना उद्धार करना है।

मेरा दिल उस दिन कचोट गया—हाय, मैं भी "रैयान" क्यों न हुआ ताकि अपने को कृतकृत्य मानता!

उसके बाद पांच-छः मील दूर डिस्पेंसरी से दवा के साथ डाक्टर बुलाये गये। उन्होंने सबों की मरहम-पट्टी की। मगर जब उन्होंने हठ किया कि यहां मत रहो वहीं अस्पताल में—दवाखाने में—चलो तो ठीक दवा होगी यहां खतरा है, खास कर पानी पड़ने की हालत में, तो उन लोगों ने पहले की ही तरह कहीं भी जाने से साफ इन्कार कर दिया!

हजार कोशिश की गयी और डाक्टर ने बार-बार कहा कि यहां मर जाओगे, मगर कौन सुनता था? मरने को तो वे लोग तैयार बैठे थे। वे अपने संकल्प से विचलित न हुए और डाक्टर को बैरंग वापस जाना पड़ा।

ठीक है, जब तक किसान इसी प्रकार मौत का भय छोड़ उससे प्रेम करने को तैयार न हो जायेंगे, तब तक न तो जमींदारी मिटेगी, न किसान राज्य कायम होगा और न उनके कष्ट दूर होंगे। उन्होंने अमली तौर से बता दिया कि "जीना है, तो मरना सीखो!"

●

गया जिले में मझियावां नाम की एक बहुत बड़ी बस्ती है। हमारे श्री यदुनन्दन शर्मा को जन्म देने का गौरव इसी गांव को प्राप्त है।

यहां के जमीदार वही प्रसिद्ध राजा बहादुर अमावां-टेकारी हैं। यह गांव जमीदार का ऐसा खैरख्वाह और भक्त रहा है कि कहा नहीं जाता। टेकारी-अमावां की जमीदारी बहुत बड़ी है। गया में उतनी बड़ी जमीदारी दूसरी कोई नहीं। प्राय: समूचे जिले में और बाहर भी फैली हुई है।

मझियावां को आज जब शर्मा जी का फख्र है और उन्हीं के द्वारा जमीदार से मुठभेड़ करने और उसे पछाड़ने का भी, वहां पहले जमीदार के हुक्म मानने की ही उसकी प्रसिद्धि थी। अकेले उस गांव ने राजा अमावां को इतने अमले (गुमास्ता और बराहिल वगैरा) दिये कि चारों ओर जिले भर में वे पाये जाते हैं। उनके ही द्वारा किसानों का शोषण होता है।

उस बेहूदी भक्ति, उस किसान-द्रोह और गद्दारी, का ही परिणाम है कि गत वर्ष वहां जब बकाश्त संघर्ष छिड़ा तो—गांव के कुछ नव-जवानों को जो शर्मा जी और किसान सभा के प्रभाव में हैं, छोड़ कर—प्राय: सभी के सभी मर्द हिम्मत हार बैठे। बहुत ही थोड़े से साथ देने को तैयार हुए।

श्री रामदेवदास जी महंत वहीं ठाकुरबाड़ी बना कर रहते हैं। वह छः महीने के लिए जब जेल गये, तो उनके साथ देखा-देखी कुछ लोग आगे बढ़े सही, मगर सब मिला कर मर्द लोग नामर्द ही रहे।

फिर भी लड़ाई तो चलती रही।

जब मैं एकाएक शाम को अंधेरा होने पर, पन्द्रह-सोलह मील बरसात में पैदल ही चल कर, वहां एक दिन पहुंचा तो मर्द भी जमा

हुए जरूर, मगर औरतों में मैंने जो उमंग देखी, वह भूलने की नहीं। वे किसानों के गीत गाती तथा क्रान्तिकारी नारे लगाती हुई मेरे 'दर्शन' के लिए, गिरोह बांध कर, बात की बात में आ पहुंचीं।

अजीब दृश्य था। एक ओर अंधेरे में, गोया मुंह छिपा कर, मर्द लोग बैठे थे, दूसरी ओर आगे बढ़ कर औरतें जमी हुई थीं, गोया मर्दों से बाजी मारने को उतारू हों। उन्होंने साफ कह भी दिया कि ये मर्द लोग गड़बड़ करेंगे, इनके लक्षण अच्छे नहीं; यहीं पर पुलिस की छावनी पड़ी है और बाहर से आ-आकर लोग गिरफ्तार होते हैं, मगर ये लोग तमाशा देखते हैं! औरतें लड़ रही हैं और ये बैठे हैं!

मैंने मर्दों से पूछा भी कि बात क्या है? यों तो, मुंह बचाने के लिए उन्होंने उत्तर दिया कि वे भी मुस्तैद हैं, मगर आवाज से—और काम, से भी—साफ था कि उनमें वह हिम्मत नहीं, वह जोश नहीं। वहां तो मर्दानगी औरतों में ही थी। मालूम होता था साड़ी और चूड़ी ने अपना स्थान बदल लिया है। लड़ाई तो पहले से ही चल रही थी। बहुतेरे लोग जेल में थे।

मुझे जरूरी काम से उसी दम वापस जाना था। फिर रातों-रात पन्द्रह-सोलह मील चल कर टेकारी आया। वहां से मोटर से गया जाकर ट्रेन पकड़ी। घोर देहात में वर्षा में सवारी क्या मिलती? पालकी थी भी, तो एक तो उस पर चलने की हिम्मत नहीं—कैसे आदमी पर चढ़ कर चलूं यही ख्याल मारे डालता था—दूसरे, उसकी तैयारी में देर होती और गया में ट्रेन छूट जाती। इसलिए मर-जी कर पैदल जाना और ट्रेन पकड़ना ही उचित समझा।

लेकिन मझियावां में जो संघर्ष चला, वह अपने ढंग का निराला था। उसे समझने के लिए कुछ बातें जान लेना जरूरी है।

जिस कुर्था थाने में वह गांव है वह गया जिले में, किसान सभा की [illegible], सब से अच्छा माना जाता है। वहां कार्यकर्त्ताओं का एक बड़ा दल है, जो और कहीं नहीं है। वहां के कार्यकर्त्ता गया के हर कोने में फैल कर किसानों में काम करते हैं! यह बात न सिर्फ जमीदारों को खटकती है, प्रत्युत कांग्रेस के उन दोस्तों को भी, जो ऊपर से किसान-

हितैषी बन कर भीतर ही भीतर किसानों को ठगते और धोखा देते हैं, जो किसान सभा को फूटी आंखों भी नहीं देख सकते क्योंकि किसान सभा उनका कपटी-मुनि वाला रूप किसानों में प्रकट कर देती है।

इसी के साथ एक बात और हो गयी। मझियावां के पास के ही मौजे खटांगी के जालिम जमीदार के जुल्म के खिलाफ वहां के एक (कोइरी) किसान, श्री वाल्मीकि जी, ने एक प्रकार का जेहाद बोल दिया और सिर झुकाने से साफ इन्कार कर दिया। इस पर जमीदार ने उन्हें तबाह करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। इधर यदुनन्दन शर्मा ने भी अपना बल वाल्मीकि जी की मदद में लगाया। मुझे भी वहां जाना पड़ा। नतीजा यह हुआ कि जमीदार सब कुछ करके भी हारा तथा भयभीत हुआ। उसका पहला प्रताप जाता रहा। जहां उसके सामने जाने की किसी को हिम्मत न होती थी, वहां वाल्मीकि जैसे सदा पांव तले रौंदे कोइरी जाति के आदमी भी सीना तान कर खड़े हो गये। यह उसके लिए मौत से भी बुरा था। इसीलिए तो वाल्मीकि जी पर ज्यादा कोप था!

फलतः, जब वाल्मीकि जी का गल्ला उसने खलिहान में रोकवाना चाहा, तो कई सौ किसान आसपास के गांवों से जमा होकर उनकी मदद में आये और कंधे पर लाठी तथा सिर पर टोकरी में खलिहान से गल्ला उठा कर जुलूस के साथ, जमीदार के दरवाजे से होते, वाल्मीकि के घर पहुंचा आये! जमीदार को घर से बाहर निकलने तक की हिम्मत न हुई—बल्कि शर्म के मारे वह सपरिवार गया चला गया।

इसलिए, जब सन् १९३९ की गर्मियों में वहां डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का चुनाव हुआ और किसान सभा वाले कांग्रेस की ओर से वहां खड़े हुए, तो कांग्रेसी दोस्तों ने बेहयाई से जमीदारों और प्रतिगामियों के साथ गुट्ट करके हमारे आदमी का सख्त विरोध किया।

उन्होंने जाति-बिरादरी का भयंकर वावेला खड़ा कर दिया। कोइरी जाति के एक आदमी को विरोध में खड़ा करवा कर कोइरी, कुर्मी और अहिर, आदि, का गुट त्रिवेणी संघ और दलित संघ के नाम से करना चाहा। ऐसा तूफान खड़ा किया कि लाठी-राज्य और गुंडा-राज्य बना दिया।

पुलिस का भी कुछ अजीब-सा ढंग रहा। ऐसा अन्धेर था कि हमारे आदमी वोट देने जाने भी न पाते। हमारे लोग निराश थे। शर्मा जी भी लाठियां खा आये। खुले आम शराब पीकर लठधर घूमते और पीटते थे। हमारे लोगों ने समझा कि हमारा आदमी जरूर हारा।

मगर आखिर में, जो विरोधी की ओर से गये उन्होंने ही हमारे आदमी को वोट देकर जिताया ! और इस प्रकार किसान सभा की सेवा को स्वीकार कर लिया ! जमीदार और उनके अखबार जो होली मना रहे थे, उन्हें मुहर्रम मनाने को बाध्य किया। उनकी आशाओं पर पानी भी फेर दिया।

मगर घृणित और गन्दे प्रचारों से सारा वायुमंडल विषाक्त जरूर हो गया। मालूम होता था कि वहां किसान सभा की जगह जातिपांति वालों का ही बोलबाला है।

ऐसी ही परिस्थिति में वर्षा शुरू होते ही मझियावां का बकाश्त सत्याग्रह छिड़ गया ! चारों ओर से कार्यकर्ता जुटे। काम चालू हुआ। चुनचुन कर गिरफ्तारियां जारी हुईं। ऐसे समय में देखा गया कि आस-पास के गांवों के कोइरी, अहीर, आदि, आ-आकर उसमें शामिल हुए। इस प्रकार, वायुमंडल का जहर धुल गया। मझियावां वाले किसान तो ब्राह्मण ठहरे और उनकी सहायता औरों ने की, यही खूबी थी।

मगर सोचा गया कि यह लड़ाई औरतें ही चलायें तो ठीक। उन्हें उत्साह भी था और—जैसा कि पहले कहा गया है—उन्होंने मर्दों से कह भी दिया था कि आप लोग बैठे रहें; हमें लड़ने दें।

असल में दो-एक बार पहले मर्द लोग उभड़ कर भी बीच में ही बैठ गये थे। इससे अंदेशा था कि कहीं इस बार भी न बैठ जायें। इसलिए औरतों ने जिम्मेदारी ली। उन्होंने उसे जिस खूबी से अन्त तक निबाहा वह प्रशंसनीय है। पूर्ण विजय भी उन्हीं के चलते हुई भी।

खेत जोतने और धान रोपने का काम था। पुलिस का कैम्प कुछ हट कर वहीं पड़ा था। हमारा कैम्प भी वहीं मौके पर था। खा-पी कर पूरी तैयारी के साथ लोग दस-ग्यारह बजे खेतों पर जाते थे। बिगुल बजता था। बस, पुलिस समझती थी कि अब काम शुरू हुआ। अतः वह

भी सदलबल गिरफ्तारी के लिए मौके पर जा धमकती थी। फिर दो-तीन बजे काम बन्द हो जाता था। यही तरीका बराबर चला।

पुलिस को भी चौबीस घन्टे की नाहक की हैरानी न थी और किसानों को भी। यह बात वहीं हुई और कहीं नहीं। यह भी वहां की विशेषता थी।

लड़ाई में मर्द भी जाते थे और स्त्रियां भी। जब पुरुष पकड़ लिये जाते, तो हल चलाने और रोपने का काम औरतें करती थीं! औरतों को पुलिस पकड़ती न थी।

पहले तो मर्दों को पकड़ कर पुलिस १८-२० मील पैदल रेलवे स्टेशन पर ले जाती थी। मगर पीछे लोगों ने पैदल जाना अस्वीकार कर दिया। तब क्या करे? वहीं रखने लगी। न तो कोई सवारी मिल सकती थी और न उसका रास्ता ही था। इसलिए मजबूरन वहीं रखना पड़ता था। फलतः, धर-पकड़ रस्म मात्र ही थी। पकड़े गये लोग घूमते-फिरते थे। हां, वे लड़ाई में शामिल न होते थे। पुलिस का सलूक अच्छा रहा। इसलिए लोगों ने उसे दिक भी नहीं किया।

यही नहीं कि मझियावां की ही बांभनी और दूसरी औरतें आतीं और हल चलाती थीं, बल्कि पास के गांवों की भी ग्वालिनें और दूसरी जाति वालियां आकर ठीक समय पर शामिल होती थीं। ठीक हल चलाने का काम वे ही करती भी थीं।

ब्राह्मण लोग कहते हैं कि हम हल नहीं चला सकते, मगर उनकी औरतों ने वह काम करके ही तो विजय पायी, नहीं तो मर्द पकड़े जाते, हल बन्द हो जाता और खेती रुक जाती; फिर तो जमीदार की ही जीत होती। किसानों को तो औरतों ने ही जिताया।

एक बात और भी थी। रोपने के बाद जमीदार के गुण्डे आते और सब उखाड़ कर फेंक देते थे। मर्द तो वहां रहते थे नहीं; वे या तो पकड़ लिये जाते या घर में रहते थे। फलतः, औरतों ने ही उन गुंडों से खेत की रक्षा की और उन्हें भगाया।

एक बार तो अंधेरे में कुछ बदमाश ऐसा ही कर रहे थे कि एकाएक औरतें पहुंचीं और वे लोग भागे। मगर औरतों ने एक ओर तो शोर

किया, और दूसरी ओर खदेड़ कर दो-तीन ने एक मुस्तंड को पकड़ ही तो लिया ! बाद में उसकी कमर पकड़ कर बैठ गयीं। इस प्रकार, उसे पुलिस के हवाले किया ! फिर तो गुण्डों का उत्पात बन्द ही हो गया। औरतें न लड़तीं, तो यह कैसे होता !

उसके बाद जमीदार ने एक दूसरा रास्ता सोचा क्योंकि न तो पुलिस की धर-पकड़ से खेती रुक सकी और न भाड़े के बदमाशों की शरारत से ही। कुछ गरीब और भिखारिन औरतें उसने—उसके अमलों ने—जमा कीं। फिर उन्हें यह लोभ देकर भेजा कि जाकर वहां रोपा हुआ धान उखाड़ फेंको और लौटो तो फी औरत एक-एक रुपया दिया जायगा। उसने सोचा कि यदि उधर औरतें हैं, तो इधर भी औरतें रहेंगी; पुलिस भी हस्तक्षेप न करेगी क्योंकि उन्हें नहीं छेड़ती तो इन्हें क्यों छेड़ेगी ?

फलतः भाड़े वाली औरतें वहां गयीं। वे अपना काम शुरू करना ही चाहती थीं कि मझियावां की औरतों को खबर लगी। बस, फिर क्या था ! गिरोह बांध कर वे दौड़ पड़ीं और भाड़े वालियों को झाड़ू से मारते-मारते भगा दिया ! उन बेचारियों को क्या पता था कि झाड़ू से सत्कार होगा। उन्हें यह बात बतायी तो गयी थी नहीं, नहीं तो शायद ही आतीं ! उसके बाद जब वापस गयीं तो शायद बड़ी दिक्कत से रुपये के स्थान पर दो-दो आने पैसे मिले !

इस प्रकार जब पुलिस, अधिकारी और जमीदार आजिज आ गये, फिर भी वहां का काम न रोक सके, तो कलक्टर साहब खुद वहां पहुंचे।

उन्होंने जांच-पड़ताल की। फिर यदुनन्दन शर्मा से कहा कि लड़ाई बन्द करें, मैं तय-तमाम करवा दूंगा। उन्होंने बात मान कर लड़ाई रुकवा दी।

तब जमीदार के मैनेजर इधर-उधर करने लगे। आखिर में हार कर उन्हें भी मान ही लेना पड़ा। जमीदार के लाखों रुपये बाकी थे। शायद दस हजार में चुकती हुई और लगान का पुराना दर काफी कम करके फिर सभी खेत किसानों को ही मिल गये।

●

: ११ :

रेवड़ा का नाम तो मुल्क में ही नहीं, उसके बाहर भी प्रसिद्ध हो चुका है। उसकी लड़ाई को भी लोग बहुत जानते हैं। मगर उसकी कुछ जरूरी, और काम की, बातें शायद ही जानते हों। भविष्य के लिए इनको जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए इन्हें लिखना पड़ता है।

रेवड़ा गया जिले के नवादा सब-डिवीजन के वारिसलीगंज थाने में काशीचक स्टेशन से तीन मील उत्तर-पश्चिम पड़ता है। वहीं पर गया, पटना, और मुंगेर जिले की सीमायें मिलती हैं। घोर देहात और पिछड़ी जगह है—ऐसी पिछड़ी कि कहिये मत। किसान सभा का काम तो वहां पर सत्याग्रह से पहले कुछ भी न था। सभा का एक मेम्बर भी वहां न था।

ऐसे गांव में ऐसी सुन्दर लड़ाई हुई जिसने जमींदार और सरकार, दोनों का ही, मद चूर किया और दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। यह क्या कम ताज्जुब की बात है? बाहरी दुनिया समझती है कि वहां किसान सभा पहले से काफी मजबूत थी, इसीलिए हम लड़े और जीते। मगर बात उलटी है और जानने की है।

प्रश्न हो सकता है कि, तो फिर लड़ाई हुई कैसे और जीते भी लोग कैसे? यही तो खूबी है! इतना ही नहीं कि वे किसान संगठित न थे, बल्कि इतने गरीब और तबाह थे कि एक पैसा नहीं खर्च कर सकते थे; एक कार्यकर्ता या स्वयंसेवक को—किसान सेवक को—एक दिन खिला भी न सकते थे! चिथड़े-चिथड़े और दाने-दाने को मरते थे!

फिर भी कई महीने तक बराबर सैकड़ों आदमी प्रतिदिन यहां खाते रहे। हजारों रुपये नकद खर्च हुए! असल में इसी तबाही और गरीबी में उस लड़ाई और उसकी सफलता का रहस्य छिपा है—यों तो पंडित यदुनन्दन शर्मा की लगन, धुन और कार्यपरता कारण है ही।

जमीदार ने किसानों का खून चूस लिया था। उनकी हड्डियां भी घिस डाली थीं। ब्राह्मणों की लड़कियां बिकवा कर उनके दाम का आधा पैसा वह जमीदाराना हक में लेता था और शेष आधा बाकी लगान में। जवान और अधेड़ मर्दों के हाथ बच्चियां बिकती थीं ताकि वे लोग आतुर होने के कारण ज्यादा पैसे दें—इसीलिए जब तक लड़कियां सयानी होतीं, वे मर जाते थे। फिर तो उन्हें विधवा जीवन बिताना पड़ता था।

ऐसी औरतों ने रो-रो कर मुझे अपनी राम कहानी सुनायी है।

वे ही रणचंडी और दुर्गा की तरह क्रुद्ध होकर इस लड़ाई में न सिर्फ औरतों का नेतृत्व करती रही हैं, प्रत्युत मर्दों को भी फटकार कर दुरुस्त करती रही हैं। यह पहला कारण है विजय का।

गरीबी की बात तो कह ही चुके हैं। जमीदार ने समूचा खेत—प्राय: हजार बीघा—नीलाम करवा लिया और लड़कियां तक बिकवा दीं, केवल यही बात न थी। गांव में बकरी के दो बच्चे हों, तो एक जमीदार के हिस्से का माना जाता था। न देने पर आफत।

यदि छप्पर पर बरसात में या दूसरे समय दो नेनुआ, कद्दू या कुम्हड़े फलें, तो उनमें से एक जमीदार का होता था! गाय, भैंस के दो सेर दूध में एक सेर उसके हिस्से का हो गया!

एक बार जरूरत पड़ी कि गाय या भैंस का दूध चाहिए। मगर वहां ढूंढ़ने से दूध न मिला। जमीदार खामखाह दूध चाहता था। कोई ऐसा ही कारण था। बस वह क्रोध में आकर बोला: "यदि गाय-भैंस नहीं हैं, तो क्या औरतें भी ब्याई नहीं हैं? फिर उन्हीं को क्यों नहीं दुह लाते?"

किसानों से वह जमीदार बेगार करवाता था—सभी जाति के लोगों से! मौजूदा जमीदार के दादा बा. शुक्कन सिंह का जुल्म वहां प्रसिद्ध है। वह शख्स मुंगेर के सिकन्दरा थाने में अपनी जमीदारी में ऐसा जुल्म करता था कि सर्वे तक में उसने बाधा डाली! मुझे बताया गया कि बिहार सरकार को उसी के लिए खास तौर से काश्तकारी कानून की ११२ धारा लगा कर कार्यवाही करनी पड़ी।

यदि रेवड़ा के किसान बैलगाड़ी रख कर किराये पर चलाते और किसी प्रकार गुजर करते, तो उनकी गाड़ियां मुफ्त में ही जमींदार के घर कई-कई दिन काम में रखी जाती थीं। न तो उन्हें और न बैलों को खाना तक दिया जाता था! शाम को वे छोड़ दिये जाते थे। सुबह फिर बुलाये जाते! न आने पर आफ़त! जमीन यदि उन्हें जोतने को दी जाती तो सैकड़ों बहाने से प्रायः सारी पैदावार ले ली जाती! बहुत ही कम उन्हें छोड़ा जाता! इसी से किसान हद से ज्यादा ऊब चुके थे। उनके भीतर असन्तोष की आग जलती थी। यह दूसरा कारण था सफलता का।

मगर जब तक किसान को आशा रहती है कि उसका मामला निपट जायेगा और जमींदार मान जायेगा, तब तक वह लड़ने का नाम भी नहीं लेता। वह स्वभावतः ऐसा ही दकियानूस होता है। इधर जब किसान आंदोलन चला तो जमींदार ने अपनी मनमानी शर्तों पर भी किसानों को खेत देने से साफ इन्कार कर दिया! सस्ती का जमाना था। नौकरी-चाकरी के लिए भी कहीं पूछ नहीं। जीविका का कोई दूसरा रास्ता न था। इसलिए किसान दौड़े-धूपे। जमींदार तथा उसके नादिर-शाह अमलों की लाख खुशामदें कीं। मगर फल कुछ न हुआ। रोने-गिड़गिड़ाने और आरजू-मिन्नत से कोई पत्थर को नहीं पिघला सकता। जमींदार सोचता, यदि इन्हें खेत दिया, तो इनका कानूनी हक स्पष्ट हो जायेगा; और अगर इन्होंने दावा कर दिया कि न छोड़ेंगे—तो?

वे लोग मजिस्ट्रेट के पास गये! मिनिस्टरों के दरवाजे भी उन्होंने खटखटाये। मगर बेकार! नेताओं में किसी-किसी ने कहा कि किसान सभा और यदुनन्दन शर्मा के पास क्यों नहीं जाते? यहां क्यों आये हो? फलतः वे लाचार होकर निराश हो गये। अब वे जी-जान पर खेलने को तैयार (desperate) थे—यदि कोई रास्ता सूझता। यह तीसरा कारण था उनकी कामयाबी का।

इसी बीच शर्मा जी एक बार उनकी खबर लेने वहां एकाएक पहुंच गये। आषाढ़ का पानी पड़ा था। थोड़ी-बहुत मक्की या सावां वे बो चुके थे। फिर जमींदार ने दफा १४४ के जरिये रुकवा दिया था। खेत

परती पड़े थे। खेतों में बीज बोया न गया था। खेत में धान का बीया यों ही पड़ा रह गया था। बहुत ही नाम मात्र को रोपा जा सका था ! जो रोपा गया था, उस पर भी जमीदार का दावा हो गया था। किसानों ने अपनी दुख-दर्द-गाथा उन्हें सुनायी ।

शर्मा जी पिघल गये ! उनका हृदय मानो विदीर्ण हो उठा। उन्होंने किसानों को समझाया-बुझाया और आश्वासन दिया। अन्त में कहा कि पुलिस, नोटिस, जमीदार की धमकी और जेल या लाठी की पर्वाह न करके धान काट लो और खेत जोत लो। पीछे देखा जायगा !

किसानों ने बात सुन ली मगर उनकी समझ में न आयी !

वे समझते थे कि यह किसान नेता है, कोई आसान रास्ता बतायेगा। मगर यह तो वही लेक्चर देता है जो दूसरे देते हैं ! हमसे जेल जाने और लाठी खाने को कहता है। मगर खुद न लाठी खायेगा और न जेल जायगा ! यह तो खूब है ! किसानों का नेता ऐसा ही होता है ?

फिर उन्होंने शर्मा जी को साफ सुना दिया—जाइये, जब हमें ही जोतना और मरना है तो जो समझेंगे, करेंगे। यह तो बराबर सुनते ही थे। हमने समझा था, आप कुछ नया और सीधा उपाय बतायेंगे, जो आसान हो। यह तो वही पुरानी बात है। हां, यदि आप अपनी बात मनवाना चाहते हैं तो यहीं ठहरिये, हमारे साथ मरिये और आगे-आगे हंसिया तथा हल लेकर चलिये। पीछे-पीछे हम जरूर चलेंगे। नहीं तो हमें मरने दीजिये। हम ऐसा नेता नहीं चाहते।

शर्मा जी के दिल में यह बात धंस गयी और वहीं ठहरने का निश्चय करके फौरन बोले—हां, मैं आगे-आगे हंसिया लेकर जरूर काटूंगा और हल जोतूंगा।

फिर तो दुनिया पलटी ! किसानों का चेहरा खिल गया ! यह चौथा कारण था जिसने रेवड़ा को जितवाया।

उसके बाद फौरन ही उन्होंने मुझे अचानक तार दिया कि मैं फंस गया। जेल जाने की नौबत है। आप काम संभालेंगे क्योंकि १४४ की नोटिस खेतों पर लगी है।

शर्मा जी ने उधर स्वयंसेवकों की ट्रेनिंग के लिए कैंप खोल दिया।

बाकायदा काम होने लगा। चारों ओर प्रचार भी होने लगा। इधर किसानों के साथ जाकर तैयार धान काट लिया। थोड़ा तो था ही; कुछ फौरन कटा और कुछ धीरे-धीरे पीछे कटा।

इस पर सरकार के घर में तूफान मचा ! कांग्रेसी मंत्रिमंडल का जमाना था। जिले के जवाबदेह पुलिस के अफसर पहुंचे और अन्त में कलक्टर साहब भी पधारे। वह तो गया जिले को ही सर करने के लिए आये थे।

किसानों ने उनसे बातें करने से इन्कार किया और कहा—शर्मा जी से पूछिये।

वह घर में थे। मजिस्ट्रेट वहीं पहुंचा। वे मिलना न चाहते थे, मगर जब घर में आया तो निकल कर मिले और बातें कीं। उसने पूछा कि धान किस खेत का है ? जवाब मिला, उन्हीं खेतों का। उसने कहा कि इसका काटना तो मना है। खैर, काटा तो काटा। हमें दे दीजिये। उत्तर मिला कि यह नहीं हो सकता, चाहे जो हो जाय, यह तो खाने के लिए काटा है और जब तक जेल में रख कर सरकार खिलाने-पिलाने का प्रबन्ध नहीं करती तब तक यदि दे ही देंगे तो खायेंगे क्या ?

और बातें भी हुईं। फिर वह चला गया। उसने कहा कि यह तो हमारा कानून साफ ही टूट गया !

शुरू से ही यह तैयारी और पूरी मुस्तैदी भी सफलता का साधन बनी।

इसके बाद शर्मा जी ने हल लेकर बचे-बचाये खेतों में, जिनमें नमी थी और बीज उग सकते थे, रबी स्वयं बोयी। किसान भी साथ रहे। बीच में लोगों ने सुलह की बातें शुरू कीं, तो उन्होंने कहा—कीजिये। स्वयं भी जमीदार श्री रामेश्वर बाबू से उन्होंने कहा कि सुलह कर लें, तो अच्छा होगा।

किसान लोग फी बीघा तीस रुपये देकर सुलह करना चाहते थे, जिसके मानी नकद तीस हजार रुपये एक मुश्त ! मगर वह न माना। उन्होंने यह भी कहा कि किसान सभा यह सुलह नहीं कर सकती।

किसान कर रहे हैं। हां, सभा उन्हें रोकती भी नहीं। जब सभा इसमें पड़ जायगी, तो बुरा होगा!

पर कौन माने?

उसके बाद देहातों में बिगुल, आदि, के साथ वालंटियरों का मार्च शुरू हो गया। इससे खूब ही बिजली दौड़ी। मैंने खुद कई मीटिंगें वहां रह-रह कर कीं। उनमें स्त्री-पुरुष २०-२५ हजार से कम जमा न होते थे। बाहर भी मीटिंगें करके उस लड़ाई का महत्व समझाया और किसानों से कहा कि रेवड़ा को तीर्थ समझ, आज्ञा पाते ही, जो जहां हो, वहीं से दौड़ पड़े। अन्न-धन की यथाशक्ति सहायता सभी करें, यह भी अपील की। स्वयं मैंने वक्तव्य दिया कि अब मौका आ गया है कि किसान सभा को मजबूरन सीधी लड़ाई लड़नी होगी, नहीं तो वह मिट जायगी। उसके बाद ही सभा की ओर से बाकायदा वही पहली लड़ाई रेवड़ा में छिड़ी।

उधर रेवड़ा में पंचायत बना कर निश्चय हो गया कि जो कुछ तय तमाम करना हो, वही करेगी। और, पंचायत ने तय करके सभी स्त्री-पुरुषों के दिल में यह बैठा दिया कि शर्मा जी के रहते, जो करें वही करेंगे। इसीलिए जेल में जाने पर भी उन्हीं पर बात टाली जाती थी।

अधिकारियों ने हजार कोशिश की कि किसान खुद मिलें और समझौता करें। मगर सब बेकार!

इसलिए पहली बार ऐसी अपूर्व एकता और शर्मा जी के एकछत्र नेतृत्व को देख, शत्रु लोग घबरा गये। सिर मार कर हार गये। मगर वे एकता और नेतृत्व का गढ़ तोड़ न सके। विजय की यह कुंजी थी।

हमने सिखला दिया था कि पुलिस वगैरा को गाली सुनाना और बदनाम करना ठीक नहीं। उनमें भी तो किसानों के ही ९९ फीसदी बच्चे हैं। उन पर भी इस युद्ध का असर होगा, क्योंकि उनके भी ऐसे ही खेत हैं। उनके घर वालों एवं माता-बहनों की भी यही दशा है। उसका चित्र उनकी आंखों के सामने इस लड़ाई में जरूर आयेगा और उनका दिल पसीजेगा। फलतः, स्त्रियों ने पुलिस के सिपाहियों के सिर

पर चन्दन और अक्षत चढ़ाया और उन्हें भाई कह कर पुकारा, हालांकि वे घर-पकड़ करते थे। इससे उनका दिल जरूर रोता था।

अन्त में "शर्मा जी की जय" के नारे लगाते हुए ही वे लोग वहां से गये। एक चीज यह भी निराली ही थी।

औरतों ने मर्दों के साथ-साथ पूरी सहानुभूति और मुस्तैदी दिखायी, यहां तक कि गिरफ्तारी के लिए हठ तक किया। आखिरी दिन जब पुलिस कच्चे कुओं को गिरा देने और उन पर चलने वाली लाठा-कुंडी को जब्त करने गयी तो औरतों ने जम कर मुकाबला किया।

साठ-सत्तर पुलिस के जवान, कई अफसर, मजिस्ट्रेट वगैरा साथ ही गये थे। मगर जहां पहले एक ही औरत लाठा चलाती थी, वहां उसने जैसे ही पुकारा—उनका झुंड जमा हो गया! एक चलाती और बाकी नारे लगातीं—"जमीदारी का नाश हो! अंग्रेजी राज का नाश हो! किसान राज कायम हो! इनकिलाब जिंदाबाद!" आदि-आदि। जब उस कुएं पर, जहां वे थीं, पुलिस न पहुंची, किन्तु दूसरे ही पर जाकर अपना काम करना चाहा—तो दौड़ कर औरतें वहां भी पहुंचीं और उन्हीं नारों के साथ लाठा चलाना शुरू किया! पुलिस भक्कू बन कर खड़ी थी। उससे कुछ बन न पड़ता था।

प्रांतीय किसान कौंसिल के सभी सदस्य उस दिन वहां थे। हम लोग पहले तो दूर से ही यह दृश्य देखते थे। पीछे निकट चले गये। पुलिस कुछ न कर सकी और अपना-सा मुंह लेकर बैरंग लौट गयी। अजीब समां था। हमारे कलेजे बांसों उछल रहे थे। शर्मा जी तो जेल में थे। असल में खेती का दिन था नहीं। सत्याग्रह होता कैसे? इसी से उन्हीं खेतों में कच्चे कुएं खोदे गये। उन्हीं से साग-तरकारी तथा ऊख बोने के लिए जमीनें सींचते थे, ताकि नर्म होने पर जोती जा सकें। पुलिस वही काम बन्द करना चाहती थी। मगर औरतें तैयार थीं कि लाठा और कुंडी पुलिस को न ले जाने देंगी, पकड़ कर लिपट जायेंगी।

औरतों से मुकाबला होने से पहले एक और घटना भी हुई, जिसमें पुलिस मर्दों से हार चुकी थी। पहले तो उसने कुछ लोगों को, जो हल

वगैरा चलाते थे, पकड़ा। किसान भी पकड़े गये और उनके हलवाहे भी। याद रहे कि खुशी-खुशी ये हलवाहे वगैरा जेल गये। वहां भी खुश थे। रेवड़ा में सभी का सहयोग था। सभी तैयार थे—फिर चाहे वे किसान हों या नहीं। यही खूबी थी। इसीलिए पीछे थोड़ी-बहुत जमीन सभी को, विजय होने पर, दी गयी ! जिनके पास पहले न थी, उन्हें भी दी गयी।

परन्तु जब पुलिस ने देखा कि धर-पकड़ से कुछ होने-जाने का नहीं, जितने पकड़े जाते उनसे कई गुना हाजिर थे, तो हल, कुदाल, आदि, खेती के औजार भी छीनना शुरू किया। उससे गरीब किसानों की बड़ी हानि थी। कहां से बार-बार लाते ?

इसलिए हमने तय किया कि, चाहे जो हो, मगर खेती के औजार पुलिस न ले जाने पाये। एक-एक औजार को दस-दस आदमी पकड़ कर लटक जायें। इसलिए उस दिन जब हल चलाने का समय आया, तो दो ही चार हलों के साथ सैकड़ों आदमी गये। हल चलता था और वे वहीं बैठ कर नारे लगाते थे। जब पुलिस के सैकड़ों का दल कैम्प से चला, तो गांव में घन्टा बजा। बस, सब सजग हो गये और दौड़ पड़े।

घन्टे का मतलब था—खतरा या बुलाहट है। ऐसा ही संकेत था। इसे सुन कर सभी को हमारे कैम्प—डीह—पर दौड़ आना पड़ता था। इस घन्टे से बड़ी आसानी थी। यह पक्के संगठन की निशानी थी।

उस दिन जब पुलिस आयी और हल वगैरा छीनने लगी, तो हम लोग भी दौड़ कर देखने गये कि क्या होता है। पुलिस ने हजार चाहा कि हल और कुदाल ले ले, मगर लोगों ने नहीं छोड़ा तो नहीं छोड़ा। थोड़ी देर तक कोशिश करके पुलिस हार गयी। तब औरतों की ओर गयी। मगर वहां भी कुछ न कर सकी। उसने यह न सोचा था कि हम औजारों को रोकेंगे तो औरतें भी इस प्रकार भिड़ेंगी। अतः शर्म के मारे पुलिस रास्ता (सड़क) छोड़ कर खेतों में भटकती फिरी। जाने क्या सोचती थी। पीछे रास्ता छोड़ कर ही टेढ़े-बांके

मार्ग से डेरे पर पहुंची। हम लोग हंसते रहे। असल में हंसी रोकी जा नहीं सकी। वह पुलिस की आखिरी हार थी।

वह तो फिर कभी पकड़ने न आयी।

हां, इसी बीच किसानों की जो १०-१२ बीघे ऊख थी, उसे हम मिल में देकर चटपट रुपया बना लेना चाहते थे। मगर सरकार के इशारे पर मिल वालों ने लेने से इन्कार किया! इस पर, एक भी ऊख न जाने देने और पिकेटिंग करने की धमकी देते ही मिल वाले सीधे हो गये और ऊख ले ली। इस प्रकार, किसानों को हजारों रुपये मिल गये। ये रुपये और तरह कभी न मिलते।

रेवड़ा की तैयारी का एक अच्छा सबूत देखिए। एक स्त्री के एक नन्हा-सा बच्चा गोद में था। एक बच्ची भी थी। उसके घर में दो ही मर्द थे और दोनों ही जेल में थे। हमने उसका हाल पुछवाया कि शायद कोई तकलीफ हो या कम से कम उसे मानसिक वेदना ही हो। पता लगा कि वह तो खुश है और कहती है कि मर्दों के रहने पर तो खर्च की फिक्र थी मगर अब तो कोई फिक्र नहीं है—क्योंकि खर्च घटा था। यह बात भी थी कि जो जेल में हो, उसकी खेती-गिरस्ती, या पशु, आदि, की हिफाजत सब मिल कर करते थे। ऐसे लोगों के घर वालों को खाने-पीने का कोई कष्ट न हो, इसकी भी फिक्र बराबर की जाती थी।

उस लड़ाई के सिलसिले में ही लोगों ने बिना टिकट उस लाइन में रेल में आना-जाना सीख लिया। हजारों आदमी बराबर ऐसा करते थे। जब पं. यदुनन्दन शर्मा का केस गया में चला, तो बिना टिकट के किसानों से भरी ट्रेनें जाने और आने लगीं! पीछे, तारीख के दिन, हर ट्रेन के प्रत्येक खाने में लट्ठबन्द पुलिस और पुलिस अफसर जाने लगे। वे चढ़ने से रोकते थे। मगर फिर भी लोग पहुंच ही जाते थे। गया से चलने में तो खामखाह चढ़ लेते थे।

एक बार सारी ट्रेन ऐसों से ही भर गयी और टिकट वाले मुंह ताकते खड़े रह गये। फिर बड़ी दिक्कत से मैंने जाकर उन्हें उतारा क्योंकि कलक्टर वगैरा थक चुके थे (किसान उनकी बातें सुनते थे,

फिर उन्हें देख कर बोल उठते थे, "भूखे हैं, रोटी दो। शर्मा जी छोड़े जायें।" आदि-आदि)।

रेवड़ा में अंत में जीत हुई। जिला कांग्रेस कमिटी की बकाश्त कमिटी ने जो १५० बीघे पर जमीदार के कब्जे की रिपोर्ट दी थी, वह मजबूरन उसे देकर बाकी किसानों ने ली। करते क्या? अपनी ही कमिटी की रिपोर्ट जो थी! लाचारी थी!

●

: १२ :

जनता की लड़ाइयों में वे ही जीतते हैं जिन्हें न केवल अपने में पूरा विश्वास होता है, वरन् अपने लक्ष्य और जनता में भी। बिना इन तीन विश्वासों के विजय असंभव है और अगर ये विश्वास हों तो उसे कोई रोक भी नहीं सकता। ऐसे विश्वास का सुन्दर नमूना बिहटा में मिला।

वहां वाली चीनी की मिल के जुल्म से ऊब कर हमारे साथियों ने, जो मजदूरों में काम करते हैं, मजदूरों की हड़ताल की बात सोची। उसकी तैयारी भी की।

मैं तो उस तैयारी से पूरा वाकिफ इसलिए न था कि उस काम से मेरा खास ताल्लुक न था; वह उन्हीं लोगों के जिम्मे था। पर, यह मालूम था कि वे लोग काम ठीक-ठीक न कर रहे थे, कुछ ढिलाई थी इसलिए मजदूरों का सुन्दर संगठन बिगड़ रहा था और मिल वाले अनेक ढंगों से उनमें फोड़फाड़ कर रहे थे। उन्हें हिम्मत भी जुल्म करने की इसीलिए हुई थी। वे चाहते थे कि मजदूरों की सभा रहने न पाये। इसलिए उनकी यूनियन में जिन मजदूरों ने काफी दिलचस्पी ली, या जिन्होंने उससे पहले वाली अत्यन्त सफल और पूर्ण हड़ताल में पूरा भाग लिया था, उन्हें या तो निकाल चुके थे, या किसी न किसी बहाने से निकाल रहे थे। इसीलिए घबराहट थी।

और, हड़ताल की बात सोची गयी। मुझे क्या ? जब उनके नेता और मेरे साथी चाहते थे, तो मैं और करता ही क्या ?

हां, मैंने यह जरूर कहा कि जरा अच्छी तरह जांच कर देखें कि सफलता होगी या नहीं। उन्होंने प्रांत के एक मजदूर नेता को, जो साथी ही हैं, बुलवा कर सब बातें कहीं और सारी हालत की जांच

करवायी। नेता ने भी कहा कि आधा इधर, आधा उधर की बात है। अगर मौका लग गया तो हम जीत जायेंगे।

फिर तो शाम को हड़ताल की घोषणा हुई। एक ही दो घंटे में वह होने वाली थी। मैं आश्रम चला गया। वे लोग वहीं थे। रात मे जय-जयकार और शोरगुल दूर से सुनता रहा। सोचा, काम बना। मगर सुबह आया तो सुना कि हिसाब गलत निकला। केवल सौ डेढ़ सौ मजदूर ही हड़ताल कर सके! नेता लोग मनहूस थे। कहने लगे कि विफल रहे—अन्दाज सही न था। मैंने पूछा, तब ? उत्तर मिला, कोई चारा नहीं, दिन भर यहीं मुंह छिपा कर पड़े रहेंगे और शाम को अंधेरे में यहां से चले जायेंगे! अजीब बात थी! मैंने कहा कि आखिर रहियेगा कहां; रास्ता चलना असंभव हो जायेगा। लेकिन आप लोग चाहे जो भी करें, मैं क्या करूं? मैं तो यहीं रहूंगा। जब तक राजनीति से हट न जाऊं मेरे लिए तो दूसरा चारा ही नहीं, सिवाय इसके कि मिल वालों को घर दबाऊं। बोले, यह तो गैर-मुमकिन है। मैंने पूछा, गैर-मुमकिन क्यों? आखिर मेरे किसानों की ऊख से ही मिल चलती है और अगर उनसे कहूं तो एक भी ऊख न आये। यद्यपि अभी-अभी मिल चालू हुई है और जाड़ा शुरू है इसलिए किसानों को पैसे की सख्त जरूरत है, मगर मेरा पूरा विश्वास है कि मेरी बात मानेंगे और हड़ताल कर देंगे। उन्होंने ऐसा कई बार किया है। तब वे बोले, सो तो होगा; मगर बाहर से रेल में जो ऊख आयेगी उसका क्या होगा? मिल वाले तो सब ऊख बाहर से ही मंगा सकते हैं। ऊख इस साल ज्यादा है भी। मैंने उत्तर दिया —किसान ही रेल पर पिकेटिंग भी करेंगे और भीतर न जाने देंगे। सवाल हुआ, कितने लोग पिकेटिंग करेंगे और जेल जायेंगे! जितने की जरूरत होगी उतने—मैंने कहा।

इस पर हंस कर बोले—नहीं-नहीं, ज्यादा से ज्यादा पचीस-पचास आदमी जायेंगे, और कुछ न होगा। हां, आपकी भी बची-बचायी प्रतिष्ठा जायेगी, यही होगा। मैंने हजार दलीलें दीं और उन लोगों के दिल से यह धारणा हटानी चाही। मगर कुछ न हुआ। मेरे भीतर अजीब महाभारत मचा था!

मेरे सामने तो वे बातें मान लेते। मगर ज्यों ही मैं तैयारी के लिए हटता कि फिर वही बातें चलने लगतीं और कहते कि कुछ न होगा। फलत:, दिन में तीन बार मैंने उन्हें मनाया और वे पीछे फिसल गये ! आखिर में शाम को ऊब कर मैंने तय कर लिया कि ये लोग चाहे कुछ सोचें और करें, मैं तो किसानों को हड़ताल और पिकेटिंग के लिए पुकारूंगा ही !

जब मेरा रंग बेढंगा देखा, तब कहीं वे लोग राजी हुए—सो भी और साथियों के जोर देने पर, मजबूरन।

बस, फिर तो पुकार हुई और उसी रात में, जबकि कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था, तीन-चार हजार किसान सारी रात मिल के फाटक और लाइन पर नारे लगाते पड़े रहे और एक भी गाड़ी भीतर न जाने दी ! पुलिस का दल भी तैनात था। जब निराश होकर और धर-पकड़ न देख कर सुबह तीन बजे अधिकांश लोग चले गये, और थोड़े ही रहे, तब पुलिस ने सैकड़ों को पकड़ कर बड़ी दिक्कत से कुछ रेलें भीतर मिल में पहुंचवायीं।

इसके बाद तो मेरे दोस्तों की आंखें खुलीं और उन्होंने माना कि मेरा ही कहना ठीक था।

फिर, दिन भर शान्ति रही। लोग पिकेटिंग पर डटे रहे। देहात की ऊख भी रोकी गयी। शाम को फिर वही भीड़ और कई हजार लोगों का वही हंगामा ! पुलिस, मजिट्रेस्ट, मिल वाले, सभी हैरान थे कि यह क्या हो गया। रात में भी कुछ न हुआ। और फिर, उसी प्रकार सुबह सैकड़ों को पकड़ कर कुछ रेलें भीतर की जा सकीं।

मगर वे लोग घबरा गये। हमने सोचा कि अब आगे एक भी रेल न जाने देंगे, चाहे जितनी धर-पकड़ हो।

इससे मिल वालों को बड़ी बेचैनी हुई और मेरे पास पैगाम पर पैगाम आने लगे कि मैनेजिंग एजेंट मिलना चाहते हैं। मुझे क्रोध तो बहुत था। मगर काम करना था। इसलिए कह दिया—मिल सकते हैं।

फिर क्या था। मोटर दौड़ाये सीधे आश्रम आये और पास के ही डाक-बंगले में बैठ कर घन्टों बातचीत के बाद हमारी मांगें उन्होंने

गान न्नीं। इस तरह हम विजयी हुए। बेशक, मेरा तो किसानों पर पूरा विश्वास था। मगर मैं भी जितनी सोच न सका था, उससे कहीं ज्यादा उन्होंने मुस्तैदी दिखायी। ठीक ही है, पीड़ित जनता उग्रतम नेताओं से भी हजार गुना उग्र होती है।

इस प्रकार, हमारे अटल विश्वास ने पासा पलटा और विजय दिलायी।

●

: १३ :

दरभंगा जिले के पड़री परगने में बियान एक मुकाम है। रोसड़ा थाने में पड़ता है। महाराजा दरभंगा की जमीदारी है। वहां उनका सर्किल आफिस पास में ही गजपति मुकाम में है। सर्किल के पास ही सीही मौजा है, जहां बहादुर किसान सेवक श्री पंचलाल (पांचा) रहता है।

सारा इलाका साल भर प्रायः जलमग्न ही रहता है। समुद्र के टापुओं की तरह कहीं-कहीं गांव हैं जिनमें तथाकथित 'रैयान' और खेत-मजदूर ही रहते हैं।

पांचा कोइरी जाति का है। वहां की सभी की सभी जमीनें जमीदार की बकाश्त मानी जाती हैं। उस पानी में निराले ढंग का धान होता है। न तो नीलामी के कागज हैं और न सर्वे के कागजों से ही पता चलता कि कब कैसे बकाश्त की रचना हो गयी!

असल में जमीदार जबर्दस्त ठहरा। उसने जैसा चाहा कर लिया। वे गरीब सदा के दबे-दबाये कब बोलते? वहीं की एक औरत ने कांग्रेस की जांच-कमिटी के सामने कहा था कि तहसीलदार ने हुक्म दिया था कि इसे नंगी करो और इसके ससुर की जांघ में इसकी जांघ बांध दो!

वहां अन्न तो दुर्लभ है। जमीन में अथाह पानी रहता है। कुछ भी पैदा नहीं होता। फिर भी लगान वसूल होता है। गरीब लोग मछली मार कर खाते-पीते हैं। मगर वह भी करने नहीं देते ये जमीदार के दूत!

पानी में जो धान होता है उसे रात में एक प्रकार की चिड़िया खा जाती है। इसलिए रात में नाव पर बैठ कर किसान रखवाली करते हैं। जमीदार के गुण्डे रात में आकर नाव बलात् उलट देते और किसान को पानी में डूबा छोड़, नाव ले भागते! किसानों के हाथ-पांव पीठ की

और बांध कर उलटा डाल देते ! मार-पीट का तो कोई ठिकाना नहीं। गोइठा (उपला) और दूध-दही तो उनकी अपनी चीज थी। डर के मारे किसान पहुंचाते रहते !

वहां सभा कौन करे ? और अगर कभी कोई गया भी, तो सीधे स्वराज्य दिलाने का ही वादा कर आया ! देह पर चिथड़ा नहीं और न पेट में अन्न—मगर ठेठ स्वराज्य ही दिलायेंगे; जले पर नमक छिड़कना इसे ही कहते हैं ! यदि जमीन और जुल्म हटाने की बात करें तो महाराजा रंज जो हो जायेंगे ! म्याऊं की ठौर कौन पकड़े ? फिर तो स्वराज्य मिलने में महान् विघ्न हो जायगा ! महाराजा ही तो उसे लायेंगे न ? किसान, जमीदार के मामूली नौकरों की जूती से भी बदतर थे और उनकी छाती वे लोग बराबर रौंदते थे ! मगर उनका पुर्साहाल कोई न था !

मैं जब पहले पहल सन् १९३७ ई. में वहां गया, तो नाव से ही हसनपुर रोड स्टेशन से जाना पड़ा। वहां देखा कि २०-२५ हजार स्त्री-पुरुषों की भीड़ है। सभी प्राय: नंगे, गन्दे और फटे-चिथड़े पहने, काले-कलूटे, दरिद्रता की मूर्ति नजर आते थे ! मैं रो पड़ा। मुझे पता चला कि बहुतेरे तो खबर सुन कर एक दिन पहले से ही आये हैं ! दस-पन्द्रह मील से पानी में आना !

खैर, मैंने सभा की और उनके हृदय की ही बात बोलता रहा। वे मुग्ध हो गये ! उनका चेहरा खिल गया ! जमीदार ने कोई विघ्न न डाला। उसे और उसके अमलों को असल में विश्वास ही न था कि यहां सभा होगी और इतने लोग आयेंगे।

मगर यह सफलता देख वे लोग भी घबरा गये। मेरे लेक्चर ने तो उन्हें भयभीत कर डाला। उन्होंने सोचा कि उनके सदा के पालतू जानवर—ये गरीब—कहीं हाथ से निकल न जायें ! मैंने जीवन भर वैसा दृश्य नहीं देखा है—और, न वैसी पामाली।

दूसरी बार, एक वर्ष बाद, जब फिर मीटिंग हुई तो जमीदार की सारी ताकत लगी और उसने चाहा कि सभा न हो सके। जब गन्दे और झूठे प्रचारों एवं धमकियों का नतीजा कुछ न हुआ—क्योंकि किसान तो

पहली सभा से ही जान चुके थे कि बात क्या है—तो सभा के लिए जमीन नहीं मिले, यही किया गया। एक के बाद दीगर, तीन-चार जगह तैयारी हुई। मगर अन्त में सभी जगहों से हटना पड़ा। जिस किसान की जमीन में शामियाना जाता, वही आकर रोने लगता कि हम उजड़ जायेंगे! आखिरकार ऊब कर हमने पहली सभा की ही जगह तैयारी कर ली। सोचा—यह तो जमीदार की खास जमीन है; अगर वह रोकेगा तो सत्याग्रह होगा। खैर, सभा हुई और लोग खूब जमे।

अब सभा में ही उनके गुण्डे विघ्न करने लगे। कोई इधर बोलता, कोई उधर सवाल करता ताकि काम न हो सके। वहां पुलिस भी थी; पर चुप्प थी। अन्त में किसानों का रुख बिगड़ा। तब गुण्डे लोग सटक सीताराम हुए।

मगर फिर दूसरा उत्पात किया। बड़ा-सा हाथी सीधे सभा में घुसाना चाहा, ताकि भगदड़ मच जाय। पुलिस ने न रोका। उसे हिम्मत ही न थी। मगर किसान कब बर्दाश्त करते? कई हजार खड़े हो गये और ईंटों से मारते-मारते हाथी को भगा दिया! फिर तो सभा का काम पूरा हुआ और खूब ही हुआ!

इस बार जमीदार की जो एक न चल पायी और सीधे किसानों ने ही उसको पछाड़ा, इससे उनमें हिम्मत हुई। फलतः दूध, दही, घी, गोइठा, बेगार, मारपीट—सब बातें बन्द हो गयीं। वे लोग तन गये। पूर्वोक्त पंचलाल ने उन्हें तैयार किया और सब चीजें रोक दीं। जब तक किसानों के बीच से ही उनके नेता न पैदा हों, उनका उद्धार नहीं हो सकता। पड़री वालों की यह दशा न होती यदि पंचलाल, उसका भाई और उसके साथी तैयार न होते।

पंचलाल बड़ा ही बहादुर और मजबूत जवान है। सीही में जो खेत जबर्दस्ती जमीदार जोतता था, उसे उसने खुद जोता और उसमें फसल लगायी। जब काटने गया, तो जमीदार के आदमी बन्दूक लेकर रोकने आये। पंचलाल सीधे छाती तान कर उनके सामने खड़ा हो गया और कह दिया—मुझे गोली मार कर मेरी लाश भले ही ले जा सकते हो; मगर जीते जी यह फसल न जाने दूंगा। आखिर वे लोग हार कर चले गये।

इसी प्रकार उसने न जाने कितने अत्याचार रोके ।

तीसरी बार खास गजपति में, आफिस के बगल में ही, हमारी सभा हुई । वहां लम्बा-सा लाल झंडा फहरा रहा था । सर्किल अफसर वगैरा शर्म और डर के मारे भाग कर कहीं चले गये । जिनकी छाती पर बैठते थे, वे ही आज उलटे बैठना चाहते हैं ! भला, यह बर्दाश्त हो ? मगर करते क्या ? इसलिए हट जाना ही उचित समझा ।

पड़री में युगान्तर हो गया ! अब पुराने दब्बू किसान न रहे ! अब तो वे सेर के लिये सवा सेर हैं ! "पैसा देकर बाजार दर से गोइठा लो, नहीं तो जाओ"—ऐसा साफ ही सुना देते हैं ! छाती ऊंची करके चलते हैं ।

●

: १४ :

दरभंगा जिले के बहेरा थाने में देकुली धाम मौजा है। वहां के हमारे सबसे जबर्दस्त और धुनी कार्यकर्त्ता श्री सत्यदेव राय हैं। गांव बड़ा है। वहां ज्यादातर मैथिल ब्राह्मण बसते हैं। मगर सब मिला कर दूसरे लोग भी काफी हैं। उन्हीं ब्राह्मणों में एक हजरत वहां के जमीदार हैं।

जमीदारी तो छोटी ही है। मगर कर्ज पर उनके कई लाख रुपये लगे हैं, ऐसा बताया जाता है। पुराने आदमी हैं और नीम टर अंग्रेजी भी जानते हैं। कहा जाता है, पुराने जमाने के मैट्रिक्युलेशन तक पढ़े हैं!

जो हो, कर्ज पर रुपये देकर उन्होंने गरीब किसानों को पामाल कर दिया है। उनकी सारी जमीनें लिखा ली हैं। वहां गरीबी बहुत ज्यादा है—इतनी कि कह नहीं सकते। एक बार मैं भूकम्प के बाद उसी इलाके में—खास देकुली नहीं—सभा करने गया था। सभा में बहुत लोग तो सिर्फ इसलिए आये थे कि कुछ रिलीफ—खाना, कपड़ा—बंटेगा! वहां बागमती नदी की कई धारायें हैं। उनने उस इलाके को तबाह कर रखा है। मगर देकुली उस धारा से बचा है।

फिर भी, गरीबी ऐसी है कि पास ही के एक किसान ने मुझे सुनाया कि उसने सकरकंद की खेती की थी और गरीब लोगों ने उखाड़ कर खा ली, मैं कुछ कर न सका! करने की हिम्मत ही न हुई! खेत में चना लगा था। वह तो खड़ा ही रहा, पर उसके दाने निकाल कर किसान खा गये!

वैसे ही इलाके में देकुली का जालिम साहूकार-जमीदार आतंक-राज्य कायम किये बैठा है। इसके करते वहां किसानों को जबर्दस्त संघर्ष करना पड़ रहा है, जो बराबर जारी है।

एक बार मैं वहां जब सभा करने गया, तो किसानों की अपार भीड़ पायी ! असल में पाप का घड़ा भरा है और फूटने वाला ही है, ऐसा मालूम हो गया ! बात की बात में वैसा भारी जमाव मैंने शायद ही कहीं पाया हो !

वहां जाने का रास्ता ऐसा बीहड़ और सड़कें ऐसी खराब कि कुछ पूछिये मत। इसीलिए तो जुल्म करने वालों को आसानी होती है। फरियाद भी कौन सुने ? वहां कौन जाये ? पर्वाह किसे ?

मगर मैंने देकुली को जितना तैयार पाया, पुलिस की आंखों के ही सामने जमीदार के लट्ठधरों ने जिस प्रकार हमारे कार्यकर्त्ताओं को वहां पीटा फिर भी किसान भयभीत न हुए, वह निराली चीज है। अकेले देकुली से कई सौ किसान जेल गये। आज भी पचासों जेल में हैं ! सैकड़ों पर केस चल रहे हैं ! फिर भी, हिम्मत में जरा-सी भी कमी का नाम नहीं ! वाह रे मर्दानगी और वाह रे तैयारी ! राघोपुर और पंडौल सागरपुर के सत्याग्रह संघर्ष में भी वहां के बहादुर किसान गये और उसे चलाया।

लोग कहते हैं कि खूब आंदोलन होने से और सभा का काम बराबर होने से ही किसान और मजदूर तैयार हो सकते हैं। मगर जुल्म और तबाही ऐसी पाठशालायें हैं, जो पीड़ितों को अपनी आंच में तपा कर पक्के बना देती हैं !

देकुली में हम कोई ज्यादा काम नहीं कर सके हैं। फिर भी, उसकी मुस्तैदी और उसकी धुन हमारी उक्त बात के पक्के प्रमाण हैं। वास्तविक स्थिति (objective condition) यों ही तैयार होती है। यह ठीक है कि अकेले श्री सत्यदेव राय की लगन और धुन ने—मस्ती ने—सबों में बिजली दौड़ा दी है। वह जवान भी चेहरे-मोहरे से खांटी किसान मालूम पड़ता है। है भी अत्यन्त सीधा-सादा। मगर उसके भीतर जो आग छिपी है, वह जमीदारी को जला कर ही दम लेगी।

उस जमीदार के दोस्त उस जिले के कुछ प्रमुख कांग्रेसी नेता हैं। वे उसके कानूनी सलाहकार और वकील भी हैं। वह इलाका छोटे

जमीदारों का है। यह भी एक बाधा है क्योंकि ऐसे जमीदार आसानी से किसान सभा के खिलाफ भड़काये जा सकते हैं ?

सरकार का क्या कहना ? वह तो जमीदारों और श्रीमन्तों की पीठ पर सदा रहती ही है। अमन और कानून उन्हीं के लिए हैं न ? गरीबों के लिए तो कानूनी न्याय ऐसी महंगी चीज है कि अप्राप्य है। वे उसमें पड़े कि तबाह हुए और घर का भी आटा गीला करके लौटे।

यदि कानून, पुलिस और कचहरियां न होतीं, जेल और फांसी का तख्ता न होता, तो किस जमीदार की ताकत है कि लगान वसूल कर लेता ? इनने किसानों के हाथ-पांव बांध रखे हैं।

देकुली का जमीदार इन साधनों से सम्पन्न है, इसीलिए हिम्मत करके लड़ता चला आ रहा है, हालांकि काफी रुपये खर्च करने के कारण उसकी भी बुरी गत है।

किसानों का मुकाबला वहां जमीदार और सरकार ने दो प्रकार से किया—अलावा मारपीट के। एक तो, कानून तोड़ने के लिए उनकी गिरफ्तारियां कीं। दूसरे, सामूहिक रूप से उन पर दूसरे-दूसरे केस खड़े किये। इस तरह किसान हैरान किये गये और जेल पहुंचाये गये।

किसानों ने भी सत्याग्रह, यानी बकाश्त जमीन के जोतने, बोने और फसल काटने के सिवाय जमीदार का घोर एवं सफल बायकाट किया। यह अस्त्र सफलतापूर्वक वहीं प्रयुक्त हुआ।

फलतः, जमीदार परेशान हो गया। उसकी खेती-गिरस्ती के लिए हलवाहे-चरवाहे की कौन कहे, उसे पानी देने और उसका भोजन बनाने वाले नौकरों तक का मिलना असंभव हो गया। मेहतर या और काम करने वालों की भी यही दशा रही। इस प्रकार, रुपया-पैसा देकर सबको बांध रखने वाले चलता-पुर्जा जमीदार का ऐसा सफल बायकाट किसी और जगह नहीं हुआ !

दूसरी खूबी वहां यह है कि सभी प्रमुख कार्यकर्त्ताओं के जेल चले जाने पर भी, किसान लोग स्वयं यह काम चलाते रहे। इस प्रकार उन में स्वावलम्बन आया, खासकर संघर्ष चलाने के मामले में।

सरकार के एक विशेष अफसर के द्वारा सुलह का प्रश्न उठा कर

हमारे किसान संघर्ष को रोकने और—पीछे सुलह में टाल-मटोल करते-कराते—परेशान करने की नीति वहां भी बरती गयी। उसका पर्याप्त कटु अनुभव हमें वहां भी हुआ। इसलिए हम लोग उस झमेले में अब पड़ना नहीं चाहते, चाहे वहां हो या और कहीं !

●

किसानों में हमने यह देखा है कि स्वावलम्बन और सामूहिक रूप से मिल कर काम करने की पुरानी आदत खत्म-सी हो गयी है। पहले ऐसा अक्सर होता था; गांव का पंचायती काम सभी मिल कर करते थे। इसे बिहार में बहुत जगह गुवाम कहते हैं। हमने देखा है कि दक्षिण बिहार में आबपाशी के लिए जवाबदेही, कानून के जरिये, जमीदार पर हो जाने के कारण किसान ऐसे परमुखापेक्षी हो गये हैं कि इधर जमीदार कुछ करता नहीं, उधर वे भी उसी की आशा पर फसल खो देते हैं। खुद पैन और आहर का प्रबन्ध नहीं करते कि धान के लिए पानी वर्षा में जमा हो और खेतों में पहुंच सके! नदियों की धारायें रुक गयी हैं, ज्यादा बालू आ जाने से उनका मुंह बन्द हो गया, और धारा का रुख पलट गया। नदी से खेत में पानी लाने की पैन (नाली) भर गयी है। इससे पानी नहीं पहुंच सकता।

जमीदार तो नालिश करके पूरा लगान वसूल करता ही है, आबपाशी का कानून भी ऐसा रद्दी है कि किसान कुछ कर ही नहीं सकता और जमीदार साफ बच जाता है। अजीब हालत है। फसल मारी गयी किसानों की और लगान भी देना पड़ा। मगर फिर भी होश नहीं कि खुद कुछ करें!

पटना जिले के बिहारशरीफ के इलाके में राजगिर से एक नदी आती है जिसे पंचाने कहते हैं। उससे लाखों बीघा धान आबाद होता है। मगर उसकी धारा में ज्यादा बालू और छोटे-मोटे पत्थर भर जाने से उसका मुंह बन्द हो गया था। धारा दूसरी ओर चली गयी थी। किसान रोते थे।

हमने अपने कार्यकर्ताओं को समझाया कि बकाश्त का सत्याग्रह

किसान क्या करेंगे, यदि पंचाने का सत्याग्रह नहीं कर सकते ? यहां तो फौरन फल मिलेगा और जेल-वेल का खतरा भी नहीं। उनके दिल में बात आ गयी !

बस, बीसियों गांवों में सभायें करके किसानों को तैयार किया गया और कई हजार किसानों का जत्था, ८-१०-१२ मील से आकर, ठीक मुकाम पर जमा हुआ। अपनी-अपनी खूराक और जलाने के लिए लकड़ी वगैरा सभी लोग साथ लाये; कुछ यों भी जमा की गयी। खोदने की कुदालें भी घर से ही लेते आये। मगर मजबूत टोकरियों की जरूरत थी और वे उनके घर कहां ? इसलिए कुछ चन्दा करके टोकरियां जमा की गयीं।

फिर, काम चालू हो गया। एक साथ हजारों कुदालें और टोकरियां बराबर चलती थीं ! अजीब समां था। लगातार हफ्तों काम चालू रहा। मालूम होता था, जैसे पुराने समय में राजा सगर के लड़के समुद्र खोदते हों, या यों कहिये कि गंगा की धारा लाने के लिए भगीरथ का प्रयत्न हो। अन्त में धारा खुल गयी। कुछ-कुछ कसर थी जो दूसरी बार के यत्न से साफ हुई। लाखों बीघा जमीन बेखटके आबाद होने लगी। बाढ़ से औरों की जो तबाही होती थी, वह भी बची।

पीछे सरकार ने नाप-जोख की और खुद खुदवाने का वचन दिया। देखें वह क्या करती है। हमें तो उससे कतई आशा नहीं, सो भी शीघ्र। पीछे चाहे जो हो।

इस प्रकार, जमीदारों का अभिमान चूर हो गया कि उनके बिना आबपाशी का प्रबन्ध असम्भव है ! किसानों की यह एक महत्वपूर्ण विजय है !

: १६ :

गंगा के उत्तर, मुंगेर और भागलपुर जिलों में, गोगरी से लत्तीपुर तक, एक बहुत पुराना बांध था। वह गंगा की बाढ़ से उत्तर के सैकड़ों गांवों की रक्षा करता था। मगर अब वह खत्म हो गया है। सिर्फ कहीं-कहीं उसका निशान मात्र है। फलतः, गंगा और छोटी लाइन के बीच के सैकड़ों गांव प्रायः हर साल डूबते हैं। उनकी फसल बर्बाद हो जाया करती है।

सभायें हुईं। सरकार से प्रार्थना की गयी। प्रस्ताव पास हुए, गर्मागर्म स्पीचें हुईं कि वह बांध बनवा दिया जाय। मगर कौन सुने? सरकार तो बज्र की बहरी है। अतः उसे सुनाना आसान नहीं है।

मैं भी एक बार ऐसी सभा में बुलाया गया। मैंने कहा—यदि सरकार नहीं सुनती, तो न सुने; हम खुद-ब-खुद क्यों नहीं सुनते? आखिर सरकार तो डूबती नहीं, डूबते तो हम—किसान—हैं। फिर हम क्यों न उपाय करें?

लोगों को यह बात जंची तो। उनकी आंखें भी खुलीं। मगर एक-दो मील नहीं, बीसियों मील लम्बे और पहाड़ जैसे ऊंचे बांध के बनाने का सवाल था! अतः, कुछ आगा-पीछा हुआ। लेकिन फिर सब लोग तैयार हो गये।

सबने तय किया कि बाकी गांवों को भी खबर दी जाय और सब मिल कर इसे बना ही डालने का तय कर लें। यही हुआ भी। दस-पन्द्रह गांवों के एक-एक दल बने और तय पाया गया कि अपने-अपने सामने का बांध ये ही दल पूरा करें।

लोग हैरत में थे कि लाखों रुपये खर्च करके बन सकने वाली चीज ये लोग कैसे बना लेंगे? मगर आखिर समूह का निश्चय ही तो ठहरा। सामूहिक काम करने का संकल्प भी कोई चीज है!

काम शुरू हो गया—बरसात आने से पहले ही। और, ऐसी तेजी हुई कि मालूम पड़ा कि केवल दस-पन्द्रह दिनों में ही उतना लम्बा बांध पूरा हो जायेगा। मालूम हो रहा था कि भीम का बल किसानों में आ गया है। मैंने कहीं-कहीं जाकर देखा तो सचमुच पहाड़ जैसा ऊंचा, और कई गाड़ियां साथ चलें इतना चौड़ा, बांध बन रहा था। ऐसी मुस्तैदी थी कि अब लिया, तब लिया हो रहा था।

इतने में ही सरकार की महारुद्र वाली तीसरी आंख खुली और उसने मदद करने के बदले प्रहार किया ! रेलवे लाइन को न जाने इस बांध से क्या खतरा मालूम हुआ ? अतः, उस कम्पनी ने सरकार पर दबाव डाला।

उधर जमीदारों को मछली का नुकसान सूझा ! बाढ़ से पानी आ जाने पर जगह-जगह रुकता था और उसमें मछलियां होती थीं। उनकी बिक्री से जमीदारों को काफी पैसे मिलते थे। अब बांध होने पर, पैसे न मिल सकेंगे।

ठीक है, बाढ़ आने पर पहले किसान और उनके पशु, आदि, मछलियों की ही तरह मरें। पीछे असली मछलियां मारी जायें ! यही है व्यक्तिगत अन्धा स्वार्थ !

मगर सरकार को तो ऐसे व्यक्तियों की रक्षा खामखाह करनी थी। इसलिए कानूनी दांव-पेंच ढूंढ़े गये और प्रमुख लोगों पर नोटिस हुई कि आप लोगों पर केस क्यों न चले ! फिर भी पर्वाह न करके काम जारी रहा। पर, जब धर-पकड़ की नौबत आ गयी तो मजबूरन छोड़ देना पड़ा।

अब तक वह यों ही पड़ा-पड़ा वर्तमान शासन प्रणाली को भर पेट कोसता है !

मगर क्या वह सुनने वाली है ?

●



इस शताब्दी के चौथे दशक में, 1936 में, अखिल भारतीय किसान सभा के उदय ने भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम को नया वेग और बल प्रदान किया। इस संगठन ने आम किसानों की मांगों को स्वतंत्रता और जनवाद की राष्ट्रवादी मांगों के साथ ऐक्यबद्ध किया।

इस दौर में किसानों को संगठित करने और अपनी मांगों के लिए जूझने में समर्थ बनाने का श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को दिया जाय, तो वह हैं—स्वामी सहजानन्द सरस्वती। अखिल भारतीय किसान सभा का पहला अधिवेशन लखनऊ में 1936 में उन्हीं की अध्यक्षता में हुआ था। 1938, 1943 और 1944 में भी स्वामी जी अखिल भारतीय किसान सभा के अध्यक्ष रहे ; अन्य वर्षों में उन्होंने इसके महामंत्री के रूप में कार्य किया।

''मेरा जीवन संघर्ष'' (स्वामी जी की आत्मकथा) के अलावा, ''किसान कैसे लड़ते हैं ?'', ''किसान क्या करें ?'' तथा ''किसान सभा के संस्मरण'', आदि उनकी अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं।

ISBN 81-7007-089-9